CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

9.2

मानव बनें

विमला ठकार

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मानव बनें !

विमला ठकार

प्रकाशिका
अ. सौ. तेजस्विनी जितेन्द्र बगड़िया
दामनगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

© विमल-प्रकाशन-ट्रस्ट
कृष्णकुटी, 5 थियोसॉफिकल हाउ. सोसाइटी
दादासाहेबना पगला, नवरंगपुरा
अहमदाबाद–380009

प्रथम संस्करण 1982

मूल्य : दस रुपये

मुद्रक :
सुरेन्द्र जे. शाह,
पारिजात प्रिन्टरी, २८८/१, राणिप,
अहमदाबाद–५
Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ ॐ ॥

निवेदन

दामनगर (जि. अमरेली, गुज.) में श्रद्धेया दीदी का शिविर हो ऐसी अभीप्सा स्थानीय एवं निकटवर्ती क्षेत्र के जिज्ञासु अनेक वर्षों से व्यक्त कर रहे थे। अन्ततः जनवरी '८२ में वह सुयोग आ ही गया। दि. २०–२३/१/८२ को दामनगर में सत्सङ्गशिविर सम्पन्न हुआ। १९८० से चलते हुए क्रम में, विश्व एवं देश की परिस्थिति के सन्दर्भ में अध्यात्म की भूमिका की बात दीदी के प्रवचनों में आती रही है और स्वाभाविक रूप से गांधीजीवन–दर्शन की महती प्रासङ्गिकता एवं तदाधारित सर्वोदय–परिवार पर आई चुनौती को झेलने की क्रियात्मक विवेचना होती रही है। अतएव ऊपर से देखने में दो स्वतन्त्र विषय होते हुए भी शुद्ध अध्यात्म–मर्म एवं देश के प्रति जनसामान्य का कर्तव्य—ये दोनों दो तारों से गुँथे वलय (कङ्गन) या दूध में घुली मिश्री के समान समन्वित हो कर दीदी के शिविरों में विशद–व्यक्त हुए हैं। ऐसे ही इस शिविर में अवतरित विमलवाणी का पूरा–पूरा ध्वन्यङ्कन, सङ्कलन एवं प्रकाशन हो ऐसी सविशेष इच्छा प्रिय नीरूबेन बगड़िया तथा साथियों को व्यक्त हुई। वह भी इस वर्ष ही साकार हो सकी—इसका आनन्द है।

केसेट्स् में अङ्कित ध्वनि को लिपिबद्ध करने में श्री सुरम्य मेहता एवं सुश्री हंसावहन शाह ने विशेष परिश्रम किया, इस प्रकाशन-हेतु राशिव्यय श्रीमती तेजस्विनीबेन बगड़िया ने किया। इस वाङ्मयगङ्गा में स्नान करने–करानेवाले सभी सहयोगी आनन्दभाजन हैं ही। धन्यवाद प्रकाशन को औपचारिकता उचित प्रतीत नहीं होती। सम्पादकीय तथा मुद्राराक्षसीय त्रुटियों के लिये अवश्य क्षमा–प्रार्थना करती हूँ।

स्वनामधन्या विमलवाणी रूप त्रिवेणी में अवगाहन का सौभाग्य हमारे मन–बुद्धि–हृदय पायें तथा इसे धारण करने एवं जीवन में आचरण करने में समर्थ बनें ऐसी प्रार्थना प्रभुचरणों में सतत निवेदित है।

विजयादशमी
२७–१०–८२

—ऊर्मिला

"यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिस्सा त्वं किं स्तूयसे मया॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि! नारायणि! नमोऽस्तु ते॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
१. प्रथम प्रवचन	१–८
२. द्वितीय प्रवचन	९–२३
३. प्रश्नोत्तरी	२४–३०
४. तृतीय प्रवचन	३१–४१
५. चतुर्थ प्रवचन	४२–५८
६. प्रश्नोत्तरी	५९–७५
७. पञ्चम प्रवचन	७६–८७
८. षष्ठ प्रवचन	८९–१०४
९. सप्तम प्रवचन	१०५–११८

"आज हिन्दुस्तान भर में जरूरत है मनुष्य बनने की। भाई! मनुष्य बने रहो। मनुष्यता नष्ट हो रही है इसलिये मनुष्य बने रहने का पुरुषार्थ करो। यही आज का एक मात्र धर्म है। बाकी सब धर्मों को अलग रख के हम मानव-धर्म अपनायें।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

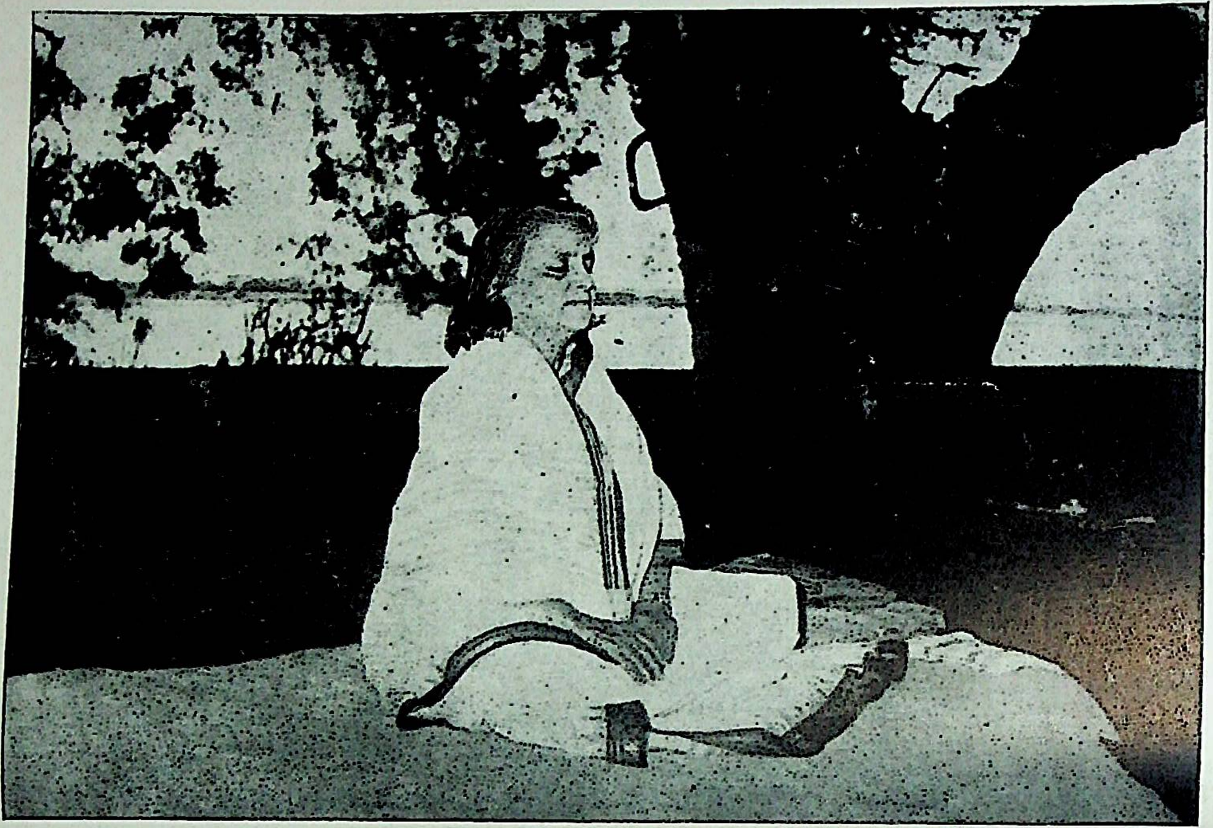

" कृष्णधाम"–प्रांगण (रामनगर) में. ध्यानमग्ना श्री 'दीदी'

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम प्रवचन

दिनांक २०-१-८२
प्रातः ६ से ७

यदि आप सब सावधान हैं तो एकाग्र होकर जो कहा जा रहा है, उसकी तरफ ध्यान दें। हम सब भारतीय व्यक्ति हैं। भारतीय संस्कृति यथार्थ-परायण नहीं है, जीवन-परायण है। भोग-प्रधान नहीं है, रस-प्रधान है। यन्त्र या तन्त्र प्रधान नहीं है, मानव-प्रधान है, मनुष्य-प्रधान है। पिछले छै-सात शतकों से भारतीय संस्कृति पर विजातीय संस्कृतियों के आक्रमण होते रहे—जिन संस्कृतियों को अपना जीवन जीने में, जीवन जीने के विज्ञान में, जीवन जीने की कला में रस नहीं है, बल्कि पदार्थों के उपभोग में, पदार्थों के संग्रह में रस है। आज हम जिस परिस्थिति में जी रहे हैं, उस परिस्थिति में हम भूल गए हैं कि हम भारतीय हैं।

भारतीय संस्कृति की विशिष्टता का सामान्य परिचय भी अपने को नहीं रहा। ध्यान भारतीय संस्कृति का और जीवन-पद्धति का एक अंग है। यदि भारतीय होने में गौरव नहीं है, जीवन-परायण, रस-प्रधान, मानवनिष्ठ संस्कृति में कोई रस नहीं है, तो ध्यान या योग ये चीजें केवल मनोरंजन की रह जायेंगी, उसका सत्त्व पकड़ में नहीं आएगा।

जीवन-परायण संस्कृति कहती है कि अपने भीतर और बाहर जीवन नाम का जिन्दगी नाम का जो तथ्य है, सत्य है, वह क्या है यह जानो, आप कौन हैं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह पहचानो। आपका आपके आसपास के जीवन के साथ क्या सम्बन्ध है, इसको निरखो, उसको परखो। और वह जो सम्बन्ध है, उसको जीने के लिए यह सौ साल की जिन्दगी आपको मिली है, इस रहस्य को आप जरा पहचानें। जीवन जीने के लिए है यानी हमारा विश्व के साथ जो सम्बन्ध है उस सम्बन्ध को जीने के लिए है।

जीवन की संपूर्ण व्याख्या या उसके सभी अंग-उपांग हम देख नहीं पायेंगे लेकिन मोटा-मोटी तौर पर जीवन को दो अंगों में आप देख सकते हैं। जहाँ जीवन है— मनुष्य जीवित है, प्राणी जीवित है; वृक्ष जिन्दा है—वहाँ है गति। जीवन का एक अंग जिसमें जीवन व्यक्त होता है वह है गति। धरती में भी गति है। धरती में आप बीज बोते हैं तो उस बीज में से अंकुर पैदा होता है। धरती में यदि प्राणतत्त्व नहीं होता, जीवन का सत्य नहीं होता, यदि धरती मरी हुई होती तो उसमें बीज अंकुरित नहीं होते। खेतों में फसल नहीं होती, बगीचों में फल-फूल नहीं होते। तो धरती जिसको आप मिट्टी-पाषाण कहते हो, जिसको आज के पश्चिम के विज्ञान के लोग जड़ प्रकृति कहते हैं, उसमें भी जीवन है। हमारे यहाँ जड़-चेतन का वर्गीकरण नहीं है। जीवन की एकता का महागान वेदों ने, उपनिषदों ने, षड्शास्त्रों ने, श्रीमद् भागवत ने, श्रीमद् भगवद्गीता ने गाया है। समझने के लिए जड़ और चेतन की भाषा भले बोलने में आई हो, लेकिन यहाँ उद्घोष हुआ है हजारों वर्षों से कि जीवन एक है, जीवन अविभाज्य है, जीवन रसमय है, अखंड है, एकरस है। इस जीवन की एकरसता का, अखंडितता का, अविभाज्यता का अर्थ यह है कि जहाँ कहीं जीवन है, वहाँ उनमें प्राणतत्त्व है, गति तत्त्व है। जल में गति है, इतना बड़ा सागर है लेकिन उसमें भी गति है। सागर के जल के बादल बनते हैं, बादल बारिश बनकर बरसते हैं, वर्षा को धरती अपने वक्ष में समा लेती है, और फिर आपको फल-फूल, धान्य देती है। तो धरती में जिस प्रकार गति है, वैसे जल में गति है। जल की विद्युत् शक्ति का आप उपयोग कर रहे हैं।

अग्नि में गति है। अग्नि की शिखाएँ, अग्नि की लपटें, ऊपर-ऊपर आकाश की ओर उठती रहती हैं। अवकाश में रटती रहती हैं। आकाश जो सर्वव्यापी है, उसमें तो अनन्त ऊर्जाओं के प्रवाह हैं। आकाश के शून्य में अनन्त गतियाँ हैं, जिनका थोड़ा-थोड़ा परिचय आधुनिक विज्ञान को अब हो रहा है।

"आत्मनः आकाशः सम्भूतः
आकाशाद् वायुः वायोरग्निः
अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी ॥"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये जो हमारे आसपास के विश्व के भूत हैं, पंचमहाभूत हैं, इनमें गति है। और गति को यदि समझना है तो जन्म, वृद्धि याने बढ़ना, क्षय यानी घटना और मृत्यु यानी रूपान्तरित होना। जन्म, वृद्धि, क्षय और मृत्यु गति के लक्षण हैं, चिह्न हैं। जिसका-जिसका जन्म हुआ यानी जो-जो व्यक्त हुआ (अव्यक्त में आकार नहीं है। व्यक्त में आकार है, रूप है, रंग है रस है, गन्ध है) वो पदार्थ बना। जो व्यक्त में आया उसके जन्म है यानी समय में काल नाम के तत्त्व में एक बिन्दु में आ करके वह व्यक्त हुआ। तो जन्म, वृद्धि, क्षय, मृत्यु ये गति के लक्षण है। बच्चा था, गोद में था, बड़ा हुआ, शिशु बना, कुमार बना, युवक बना, प्रौढ़ बना, वृद्ध बना अपने देह के पात्र में—इन गतियों को आपने देखा है। अंकुर है, पौधा है, वृक्ष बना, सूखने लगा और मर गया वृक्ष भी। पशुओं में, पक्षियों में, प्राणियों में आप देखेंगे-जन्म, वृद्धि, क्षय और मृत्यु का एक महारास चल रहा है। न जन्म होने का अन्त है, न मृत्यु का अन्त है। अनादि-अनंत है जन्म और मृत्यु, वृद्धि और क्षय। इनकी गति बाहर और भीतर आपने देखी।

सूर्य है, चन्द्र है, तारा नक्षत्रमण्डल है, इनमें ऋतुओं की गति घूमती है। शिशिर है, हेमन्त है, वसन्त है, ग्रीष्म है, वर्षा है, शरद है—ऋतुओं का चक्र घूमता है। वैसे एक जन्म-मृत्यु का रास है वैसे षड्-ऋतुओं का रास भी अपने आस-पास घूमता है। यह विश्व एक नित्य वृन्दावन है, जिसमें सत्ता और शक्ति का महारास है। सत्ता शक्ति के साथ खेल रही है, ये ऋतुएँ खेल रही हैं। यह पंचमहाभूतों का खेल नहीं। एक तरफ सत्ता है जो निराकार, निर्गुण है, जो शून्य रूपसे आकाश के रूप से हमारे आसपास खड़ी है और दूसरी तरफ हरेक गोपी के साथ एक कृष्ण है वैसे हरेक पदार्थ के आसपास एक सत्ता उसको आश्लेष में बाँधकर, हर पदार्थ को अपने आलिंगन में बाँधकर खड़ी है। वह शून्य खड़ा है, निर्लेप, निर्विकार, पदार्थों में गति के विकार हैं, लेकिन सत्ता में विकार नहीं। तो जीवन के दो अंग हैं (१) एक गति और (२) गतिमुक्त स्थिति। एक सत्ता याने होनेपना और दूसरा पदार्थ। सत्ता अव्यक्त है, पदार्थ व्यक्त है। तो जीवन के दो अंग हुए (१) अव्यक्त (२) व्यक्त। (१) गति और (२) गतिमुक्तता, (१) पदार्थ और (२) शून्य। दो बड़े अंग हैं, आपने देखा होगा कि पहले जो जीवन था, वह अब नहीं है।

आपके भीतर आप देखते हैं वृत्तियों का नर्तन-नृत्य और वृत्तियों के उठने और मिटने के बीच एक शून्य का अन्तराल। एक विचार आया, उठा, शान्त हुआ,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरा विचार आने से पहले। पहले विचार का शांत होना, दूसरे का उठना इसमें भी एक शून्य है, एक अन्तराल है। तो वृत्तिओं के विकारों के, विचारों के बीच, कर्मों के बीच, अरे! श्वास और उच्छ्वास के बीच शून्य की एक सत्ता का अन्तराल आता है। हमारे बाहर भीतर गति भी है, स्थिति भी है। अब यह जो गति और स्थिति, शून्य और पदार्थ, निराकार और साकार सगुण और निर्गुण, व्यक्त और अव्यक्त ये जो अंग हैं इन दोनों के साथ हमारा सम्बन्ध है।

भारतीय संस्कृति कहती है—

'तस्मात् योगी भवार्जुन' हे अर्जुन ! योगी बन जा। कोई संस्कृति नहीं है दुनिया की जो मनुष्य से कहती है कि तू योगी बन। योगावस्था में जीना ब्राह्मी दशा है रे !

"एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ ! नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि, ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥"
"यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमम् मम ॥"

हे पार्थ ! मेरा परम धाम है, जिसमें मुझे आना है, रहना है। जहाँ जाने पर लौटना नहीं है। योगदशा–ब्राह्मीदशा चेतना की एक ऐसी दशा है, जहाँ से वापस लौटना नहीं होता है जहाँ रहके जीना होता है, तो योगी बनने का अर्थ क्या हुआ ? युक्त रहेंगे। जुड़े हुए रहेंगे। किसके साथ जुड़े रहेंगे ? गति के साथ भी और स्थिति के साथ भी। यह जो व्यक्त का, पदार्थों का जगत है, उसके साथ भी, विषयों के साथ भी, वृत्तियों के साथ भी और विषय जिसने पैदा किए, वृत्ति जिसने पैदा की, उसके साथ भी। तो घटमें वृत्ति को धारणवाले के साथ और घट से बाहर पदार्थ उत्पन्न करनेवाले के साथ अथवा पदार्थों के निर्माण करनेवाले के साथ जुड़े हुए हम रहेंगे। यह संस्कृतिका सत्त्व है।

भारतीय संस्कृति ने यह नहीं कहा कि जीवन से दूर भागो। यह नहीं कहा है कि ये विषय मिथ्या हैं, माया है। अरे ! यह विश्व प्रभु की काया है।

"विश्व प्रभु की काया यह नहीं नहीं रे माया।"
यह विश्व प्रभु की काया है, उसको पवित्रता से स्पर्श करो।
"ईशावास्यमिदं सर्वम्, यत्किञ्च जगत्याम् जगत्"

इस जगत् में जो गतिशील है। जगत् का क्या अर्थ हुआ ? जो गतिशील है। तो जो गतिशील है यानी जो गति को धारण करता है यह सारा जगत् ईश का यानी ईशावास्य है। गति को धारण करनेवाला, सत्तारूप, सदाशिव है—जो गति नाम की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शक्ति को धारण करता है। ऐसा जो सदाशिव है, उसके साथ जुड़े रहना। तो योगी बनने का अर्थ क्या हुआ? गति और गति-मुक्तता-दोनों के साथ हम संयुक्त रहेंगे। संक्षेप में देखना है इसलिए एक-एक बात को अच्छी तरह से पकड़ लें। उस गति के साथ कैसे सम्बन्धित रहना इसका विवेचन अभी आपके पास मुझे करना नहीं है।

हम मौन में बैठे थे थोड़ा समय। १५-२० मिनट, जो भी बैठे हों। यह मौन में बैठने का हमें अभ्यास करना पड़ता है क्योंकि आज की जीवन पद्धति में केवल गति में ही आदमी व्यस्त रहता है। गति से ग्रस्त रहता है। उसको सिखाना है (और सीखना है) कि भाई! गति में जीवन है, ऐसे गति से मुक्त होकर स्थिर बैठने में, स्थिति में भी जीवन है। उसको देखा। पहले देखेंगे फिर होगा उसका स्पर्श। संपर्क होगा। स्पर्श और संपर्क के बाद परिचय होगा। परिचय के बाद सम्बन्ध होगा। सम्बन्ध में प्रेम जाग उठेगा और फिर उसके साथ जीने लगेंगे, बिना प्रयत्न के, सहजता से। तो हम मौन में बैठे हैं। किसलिए? गतिमुक्त जो हमारा स्वरूप है, उसको देखने के लिए। शब्द से मुक्त जो हमारे भीतर मौन है उसको देखने के लिए। संकल्प-विकल्प से मुक्त चित्त की एक अवस्था है उसको देखने के लिए यह मौन में बैठना होता है। जीवन-पद्धति का यह अंग होना चाहिए कि दिन के बारह घण्टों में या (२४) घण्टों में आप संसार के लिए समय देते है, समाज के साथ सम्बन्ध है, उसके लिए भी दो-तीन घण्टे देते हैं, निद्रा के लिए छः सात घण्टे है। तो उस विश्व के विभुके साथ, प्रभु के साथ, उसकी प्रभुता के साथ हमारा जो सम्बन्ध है, उसको जानने, पहचानने के और जीने के लिए भी समय निकालें।

भारतीय संस्कृति में समय निकालते थे। पद्धति सम्बन्ध रखने की अलग-अलग हो सकती है, लेकिन उस सम्बन्ध को जीना है। वह सम्बन्ध भी क्या है जिसको जिया नहीं जाता? प्यार को जीना पड़ता है, श्रद्धा को जीना पड़ता है। सम्बन्ध को जीने से कृतकृत्यता-कृतार्थता आती है। तो सम्बन्ध जीने के लिए दिन में यदि हम दो प्रहर नहीं निकाल सकते हैं तो कम से कम एकाध प्रहर तो निकाल लें। एक प्रहर यानी ढाई घण्टे। ढाई घण्टे का एक प्रहर होता है। यदि एक साथ हम नहीं निकाल सकते तो सुबह और शाम १।-१। (सवा-सवा) घण्टा निकालें। डेढ घण्टा या तीन घण्टा निकाल सकते हों तो अच्छा है। इनमें जीवन के सम्बन्ध में, सन्तों के, ऋषियों के, मुनियों के अनुभव के ग्रन्थ है उनको देखना। स्वयं मौन में बैठना। यदि भजन में, पूजन में, जप में रस है तो वह करना। तीन घण्टे जो है, उसमें अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार विश्व

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्ता के साथ सम्बन्धित हो जाना। तो हम बैठते हैं सुबह। सुबह में क्यों बैठे हैं ? क्योंकि असल में यह जो ब्राह्मी मुहूर्त का समय होता है यह सत्त्वगुणी समय कहलाता है। यानी मध्यरात्रि के एक प्रहर बाद ढाई बजे से या बहुत हुआ तो तीन बजे से साढ़े पांच बजे तक का समय ब्राह्मो मुहूर्त कहा जाता है। इस ब्राह्मो मुहूर्त में विश्व शांत है, नीरव है, निस्तब्ध है। उषा अभी आई नहीं है, अरुणोदय हुआ नहीं है, तो वह समय समाधिस्थ होने के लिए है। ध्यान में, मौन में, स्थिर होने के लिए इस समय को अनुकूल माना जाता है। सुबह तीन बजे से साढ़े पांच बजे तक का समय और शाम को सूर्यास्त के बाद। जब भी सूर्यास्त होता हो, यदि सात बजे सूर्यास्त होता है तो सात से साढ़े नौ बजे तक का समय। सन्ध्याकाल—जिसमें संधि होता है ये ब्राह्मो मुहूर्त है। जहाँ संधि होता है प्रकाश और अंधकार का वहाँ, उस संधिकाल में विशेष शक्ति होती है। मिलन है वहाँ प्रकाश और अन्धकार का इसलिए सन्धिकाल में विशेष शक्ति होने के कारण साधना के लिए यह समय अनुकूल माना जाता है। इस समय में अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार घण्टा, सवा घण्टा, डेढ़ घण्टा मनुष्य बैठें। अब यह जो मनुष्य है, विश्व के साथ संबंधित होने के लिए बैठा है। अभी वह समाज का कुछ भी नहीं है, कोई भी नहीं है। समाज घटक के नाते नहीं, कुटुम्ब-परिवार के सदस्य के नाते नहीं, स्त्री-पुरुष होने के नाते नहीं। ये जो देह की भूमिकाएँ हैं—पिता, पुत्र, पति, माता, पत्नी, कन्या इन सब भूमिकाओं के आवरण से अलग होकर। तो समाज के घटक, कुटुम्ब परिवार के घटक सब छोड़कर आप प्रभु के, प्रभु आप के यह जो मधुर संबन्ध है, उसको समझने, जीने का यह समय है। तो पहला काम यह समय निकालने का संकल्प हो। कोई तीन बजे से साढ़े चार तक बैठेगा, कोई चार बजे से साढ़े पांच तक बैठेगा। जिसको जो समय अनुकूल पड़ता हो। अनुकूल का अर्थ क्या हुआ ? रात की कम से कम छः घण्टे की निद्रा लेना। एक चतुर्थांश ($\frac{1}{4}$) समय जिंदगी का तो चला ही जाता है निद्रा में। यदि आप ग्यारह बजे सोने जाएंगे तो ११-१२ बजे सोनेवालों के लिए ध्यान नहीं है। जो व्यक्ति जीवन में, आहार-विहार में स्वच्छन्दता रखेंगे उनका ध्यान विषय नहीं है। इस स्वच्छन्दता-प्रधान संस्कृति में मैं लावण्य लाना चाहती हूँ।

संयम-प्रधान संस्कृति बनेगी तब मनुष्य आकृति से मनुष्य है वैसा स्वभाव से मनुष्य बनेगा। ध्यान उसके लिए है। ध्यान का अभ्यास उनके लिए है जो स्वच्छन्दता की ओर से संयम की ओर बढ़ना चाहते हैं, पशुता की ओर से देवत्व की ओर बढ़ना चाहते हैं। जो सचमुच मनुष्य बनना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहते हैं वे उठें, हाथ-मुँह धोकर, संभव हो तो स्नान करके बैठें। संभव क्यों कहा? शरीर का स्वास्थ्य, अवस्था, अनुकूलता, परिस्थिति सब देख करके। स्नान नहीं हो सकता है तो कम से कम कपड़े बदलने चाहिएँ। रात को जिन कपड़ों से सोएँ उन्हीं से उठकर ध्यान में बैठें यह शास्त्रोक्त नहीं है। Scientific नहीं है। वैज्ञानिक नहीं है। कपड़ों में संस्कार पड़े होते हैं, संस्कारों के स्पंदन चिपके हुए पड़े रहते हैं। इसलिए सुबह उठ करके और स्नानादि करके शुद्ध होकर के मनुष्य बैठें। बैठने को सीख लें कि कैसे बैठना है? 'स्थिरम् सुखमासनम्।" शान्ति से सुखपूर्वक बैठा जा सकता है उस आसन पर बैठें। बैठने का अभ्यास न हो तो दीवार का सहारा लें, लेकिन दीवार के सामने लकड़ी का एक तख्ता रखें। दीवाल की जो ठण्डक है वह न तो शरीर के लिए ठीक है न ध्यान के लिए अनुकूल है तो कोई सहारा जिनको चाहिए वह सहारा लें। जो जवान हैं वह सहारा न लें और सीधे बैठें। बैठने की कला में दो चीजें हैं—शरीर का समकोण होना चाहिए धरती के साथ आसन लगा के। स्वस्थ सम्बन्ध है धरती के साथ और मेरुदंड समकोण में खड़ा है। सीधा खड़ा है। मेरुदंड और गर्दन सीधी होने से श्वासोच्छ्वास में अपनेआप एक लय बन जाती है। तो अभी आप से मुझे अधिक कहना नहीं है, बाकी की बातें बाद में करेंगे। लेकिन पहले तो बैठने का अभ्यास हो। ५-१०-१५ मिनट, २० मिनट आसन स्थिर होना चाहिए। कोई मूर्ति रखी हो ऐसे मनुष्य स्वस्थता से बैठ सकें और बैठ के देखेंगे कि बैठना नहीं होता। क्यों? दर्द होता है, इधर-उधर जोड़ों में दर्द होता है, जोड़ों में दर्द होना कोई जिंदगी का स्वभाव नहीं है, यह विकृति है। विकृति क्यों आई? फिर आप खोजेंगे। दो चार दिन ही बैठेंगे तो फिर पता चलेगा कि कमर दुःखती है, घुटने में दर्द है, जोड़ों में दर्द है यह पता चलेगा तो आहार-विहार में फर्क करके मनुष्य दर्द न हो इतना देख लें। आयुर्वेद तो है ही। आयु का वेद है, वह जीवन का वेद है, तो निसर्गोपचार से या आयुर्वेद की मदद से कहीं अपने शरीर में stiffness आई हो, जकड़न आई हो उसको हटा दें। देखिए आप जहाँ ध्यान सीखने जाइए वह ध्यान आपको आहार-विहार की ओर ले जायगा। आपकी उठने-बैठने की पद्धति है वहाँ से शिक्षण शुरू हो जायगा। यह स्व-शिक्षण है, इतना सीख करके आहार-विहार में फर्क करके शरीर को लचीला और किसी भी आसन पर स्थिरता से, सुखपूर्वक बैठ सकें ऐसा बना दें। जिसको बैठना ही नहीं आएगा वे आगे कैसे बढें? जिनको बहुत तकलीफ है, अवस्था बढ़ गई है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उनको जिस प्रकार से आराम है उस प्रकार से बैठें। कुर्सी में बैठना है तो कुर्सी में बैठें। एक ही ख्याल रखें कि मेरूदंड सीधा हो।

चाहे जैसे बैठने से मैं नहीं मानती कि मौन में उतरा जा सकता है। मौन में उतरने का अभ्यास करना है। मौन में उतरने के बाद ध्यान अपने आप हो जायगा। ध्यानावस्था अपने आप जाग्रत होगी। उसके पूर्व हम तैयारी करते हैं। भारतीय संस्कृति का एक अंग है ध्यान।

संक्षेप में भारतीय–संस्कृति पदार्थपरायण नहीं है, जीवनपरायण है। यंत्र तंत्र प्रधान नहीं है, मनुष्य प्रधान है। यह भोग प्रधान नहीं है, रसप्रधान है—रसिकता प्रधान है। ध्येय उसका क्या है? योगी बनना। योगी बनने का अर्थ क्या है? बाहर के—भीतर के विश्व के साथ संयुक्त रहना। बाहर–भीतर विश्व है, उसके क्या अंग हैं? गति और स्थिति, शब्द और मौन, क्रिया और क्रिया-मुक्तता, एकांत और सम्बन्ध ये दो अंग हैं। दोनों से सम्बन्धित रहना है। एक का भी निषेध भारतीय संस्कृति में नहीं है। एक का निषेध करेंगे, एक की आहुति देकर दूसरे में सुख या आनंद लेंगे तो वह अधूरा–अपूर्ण रह जायगा। तो यह बातें पूर्वभूमिका के रूप में मैंने कहीं। ध्यान अवस्था के लिए मौन का अभ्यास या मौन का स्व–शिक्षण अनिवार्य बतलाया। समय उसके लिए दोनों संधिकाल का है, जिसको जो अनुकूल पड़ता है, चुन लें। अरुणोदय से पहले का एक प्रहर, सूर्यास्त के बाद का एक प्रहर। उसमें करें क्या? तो अपने ध्यान या साधना के लिए कपड़े का एक जोड़ ऐसा रखें कि जैसे पूजा में बैठने के लिए लोग वस्त्र पहनते थे। वैसा एक अपने कपड़ों का अलग जोड़ा रखें, उस समय बैठने के लिए। शांति से नरम गरम आसन बना करके शरीर को बिठाने का अभ्यास करें। शरीर को बिठाना, उठाना, चलाना, शरीर के हलन–चलन एक महाकाव्य है। आकाश के साथ सम्बन्ध आता है और धरती के साथ सम्बन्ध आता है। बैठने में, उठने में, चलने में स्वर है, संगीत में जैसे सात स्वर होते हैं वैसे यह शरीर की जो क्रियाएं हैं उनमें धरती और आकाश दोनों के साथ संबन्धों को ठीक ढंग से हम जी सकें इसलिए बैठने का अभ्यास कैसे करें इतनी बात अभी कही है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय प्रवचन

दिनांक २०-१-८२
प्रातः १० से ११

जो प्रातःकाल की सभा में शामिल रहे होंगे और जिन्होंने सावधान होकर के संवाद में साथ दिया होगा, वे अब मेरे साथ आगे बढ़ें। आधुनिक मनुष्य की सबसे बड़ी कोई यदि समस्या है, कठिनाई है तो यह कि उसका शरीर और उसका मन उसके वश में नहीं रहता। जिसमें वह चाहता है, उसमें साथ नहीं देता। यह है समस्या का स्वरूप—परवशता, पराधीनता। पराधीनता का प्रारंभ है—शरीर या इन्द्रियाँ काबू में नहीं है, वह नाच नचाती हैं और मनुष्य को नाचना पड़ता है। मन काबू में नहीं है, वाणी काबू में नहीं है, इसलिए जो करना चाहता है वह कर नहीं पाता और जो नहीं करना चाहता वह परवश उसके हाथों से हो जाता है। गरीब हिन्दुस्तान की ही यह समस्या नहीं है, सारे संसार की है। अपने शरीर के मन और वाणी के सामने मनुष्य आज लाचार है, असहाय है, इसीलिए वह नित्य अशान्त है। शरीर की अस्वस्थता आधुनिक युग की बड़ी बीमारी है। कुछ-न-कुछ शिकायत हरेक के शरीर में रहती है, छोटे-बड़े असंतुलन रहते हैं। imbalances शरीर में भी, मन में भी। शरीर जिसका अस्वस्थ है, असंतुलित है, उसकी वाणी, उसका मन भी असन्तुलित रहा ही करता है। ये जो बेचैन मनवाले और चिर अस्वस्थ शरीरवाले नागरिक हैं आज संसार में, वे फिर एक दूसरे से डरते हैं, इसको fobia कह सकते हैं। व्यक्ति एक दूसरे से डरते हैं, राष्ट्र एक दूसरे से डरते हैं। तो एक दूसरे से डरना, एक दूसरे पर अविश्वास करना, एक दूसरे से बचते रहना और बचने का सामान जुटाना यह धंधा हो पड़ा है मनुष्य का। मनुष्यों का एक दूसरे से इतना भयंकर भय और अविश्वास नहीं होता तो संग्रह में और परिग्रह में मनुष्य की इतनी श्रद्धा नहीं बैठती।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन बेचैन नहीं होते, वाणी और मन बेक़ाबू नहीं होते तो मनुष्य एक दूसरे के साथ इतना अन्याय, अत्याचार, शोषण कर नहीं पाता।

हिंसा का, शोषण का, भ्रष्टाचार का मूलस्रोत है कि मनुष्य का तन, मन और वाणी उसके स्वाधीन है नहीं। यह जब तक हम नहीं समझेंगे तबतक ये शोषण–हिंसा आदि चलते ही रहेंगे और इस शोषण–प्रधान, हिंसक संस्कृति में से, जो अहिंसात्मक समाज का दर्शन युग–पुरुष महात्मा गांधी ने खड़ा किया था, उसकी तरफ हमारे पाँव नहीं बढ़ेंगे। तो शरीर को, मन को, वाणी को स्वस्थ बनाना, निरामय बनाना, स्ववश यानी स्वाधीन रखना यह जो योग का मूल हेतु है यह समाज विरोधी नहीं है। अध्यात्म जीवन–विमुख नहीं है, मनुष्य–विमुख नहीं है, यह आपके ध्यान में आएगा। यह किसलिए कह रही हूँ ? कि जो लोग अपनी समस्याओं से, अपने जीवन से, आज की परिस्थिति से दूर भागना चाहते हैं, मुकाबला करना नहीं चाहते हैं, भाग जाना चाहते हैं, परिस्थिति से दूर–दूर। उन लोगों में आज फैशन बन गया है, अध्यात्म के नाम से, ध्यान के नाम से कहीं–न–कहीं पलायनवाद में जाने का।

"Religious escapism is considered to be a noble work." मानते हैं कि वह बड़ी भव्य–दिव्य बात है और ध्यान के नाम से वह उतनी ही क्षुद्र, स्वकेन्द्रित वृत्ति में पड़े रहते हैं। "मुझे समाधि चाहिए, मुझे अतीन्द्रिय शक्तियाँ चाहिए, अतीन्द्रिय अनुभूति चाहिए, यह चमत्कार चाहिए, वह चमत्कार चाहिए। थोड़े से थोड़े परिश्रम में किसी देवता को कृपा से अधिक से अधिक धन चाहिए।" तन्त्र के, मन्त्र के–हठयोग के सभी के पीछे मनुष्य पड़ता है। तो जिस स्वकेन्द्रित वृत्ति के कारण, उसके असंतुष्टफल के कारण समाज में अन्याय, अत्याचार या शोषण पनपते हैं, उसी स्वकेन्द्रित वृत्ति को लेकर वह धर्म की तरफ मुड़ता है, अध्यात्म की तरफ मुड़ता है और फिर सिद्धियों के, तान्त्रिकों के, मान्त्रिकों के, अतीन्द्रिय अनुभूतियों के पीछे दौड़ता है। दौड़नेवाला अहंकार वही है जो समाज में, भौतिक जीवन में अनर्थ कर रहा था वही महत्त्वाकांक्षा महेच्छा है, वही स्वकेन्द्रित क्षुद्र स्वार्थ है और लोग समझते हैं कि अहो ! हम तो भौतिकवाद से अध्यात्म की ओर मुड़े हैं, इस भ्रम का निराकरण करना चाहिए।

जिसको आज के समाज में जो गंभीर परिस्थिति है, उसके कारणों की कुछ पड़ी नहीं है, अपने जीवन में से उन कारणों को हटाने की भूख, प्यास जिसमें नहीं है उसकी आत्म–साधना अहंकेन्द्रित–स्वकेन्द्रित क्षुद्र स्वार्थ बन जायगा। ऐसा न हो यह आपके और हमारे ध्यान में रहें। ध्यान की ओर क्यों जाना चाहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं ? क्यों योग की ओर मुड़ना चाहते हैं ? क्यों आत्म–साधना में जाना चाहते है ? नवमानव का सर्जन यदि हमारे भीतर में से हम नहीं कर पाएँगे, और केवल भौतिक सुखों के बदले मानसिक सुखों के पीछे दौड़ेंगे, भौतिक शक्तियों के बदले अतीन्द्रिय शक्तियों के पीछे दौड़ेंगे तो वह धर्म नहीं है, न वह अध्यात्म है। इतनी एक थोड़ी-सी सूचना या चेतावनी एक बहन के नाते आप सबको मैं देना चाहती हूँ, क्योंकि अध्यात्म को जितना कुछ मैंने देखा है और समझा है वह आज 1982 में हम बैठे हैं तो वह जो जीवन के अभिमुख, मानव–निष्ठ, मानव–परायण जीवन–परायण अध्यात्म है, उसकी बात मुझे आपके पास रखनी है।

आप और हम मार्क्स के, लेनिन के वंशज हैं जिन्होंने कहा था कि अमीरी गरीबी मानवकृत है, प्रारब्ध की बनाई नहीं है। हम गांधी, विनोबा के वंशज हैं, जिन्होंने कहा है कि धर्म जीवन–अभिमुख है, मानव–अभिमुख है। तो मार्क्स के लेनिन के, गांधी के, विनोबा के वंशजों का धर्म, अध्यात्म वैज्ञानिक होगा। superstition याने अंधश्रद्धा को, कल्पनाओं को, भावनाओं को या कोरी भावनाओं की आतशबाजी को अध्यात्म में स्थान नहीं है। अन्ध श्रद्धाएँ, विश्वास credulity को कोई स्थान नहीं है। अपना वैज्ञानिक धर्म है, scientific spirituality है इस युग में हम बैठे हैं। आप भूल नहीं सकते हैं रामकृष्ण को, विवेकानंद को और गांधीजी को–जिन्होंने सनातन धर्म का, युगधर्म का स्वरूप जो है वह प्रकट किया है। **सनातन धर्म एक है, गुणधर्म बदलते रहते हैं।**

आज आपका और मेरा जो युगधर्म है, अपने शरीर को, मन को, वाणी को संतुलित बनाकर, अशुद्धियों से मुक्त बनाकर–आत्मस्थ बना करके हम व्यवहार करें, तब हम असामाजिक नहीं, बल्कि सामाजिक घटक बनेंगे। तब हम शोषण, अन्याय अत्याचारों के सहयोगी नहीं बल्कि उसके साथ असहयोग करनेवाले बनेंगे। आज हम निस्तेज हैं, निष्प्राण हैं और समाज में जो परिस्थिति है, अन्याय, अत्याचार आतंक, भ्रष्टाचार इन सबको लाचार बनके देख रहे हैं, खुली आँखों से देख रहे हैं और मानते हैं कि हमसे कुछ नहीं हो पाता, कुछ नहीं कर पाते। क्यों ? क्योंकि मनुष्य अपने साथ लड़ने को तैयार नहीं है, अपने को स्वाधीन बनाने को तैयार नहीं है। जब उसको दीखने लगा कि शत्रु भीतर है। शोषण की, अन्याय की, अत्याचार, भ्रष्टाचार की जड़ें हमारे भीतर हैं, यह जब दीखा तो मनुष्य अब अपने हाथ कुछ करना नहीं चाहता। उसको लगता है, कोई कुछ करें, सरकार कुछ करें, कायदा कुछ करें, सिद्ध लोक कुछ करें, मान्त्रिक-तांत्रिक कुछ करें और हमें सब बना–बनाया तैयार मिल जाय–instant ready made मिल जाय, बनी–

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाई मुक्ति मिले, बनी-बनाई सिद्धि मिले, कोई शक्ति-संपात करे, कोई कुछ करें और हम अपनी स्वच्छन्दता में पड़े रहें।

स्वच्छन्दप्रिय मानस में वैज्ञानिक अध्यात्म की बात प्रिय नहीं लगती यह मैं जानती हूँ। स्वेच्छाचार का, स्वैराचारका यह युग है और स्वाधीनता के नाम पर स्वच्छन्द चल रहा है घर-घर में, परिवार में। स्वेच्छाचार, स्वैराचार में से अनाचार, दुराचार तक पहुँचते कितना समय लगता है ? कोई समय नहीं लगता है। तो यह स्वच्छन्द, यह स्वेच्छाचार, यह स्वैराचार समस्या की जड़ है इसको हम पहचानें। कोई पांच-पचास व्यक्ति भी तालुके में यदि संयम के रास्ते पर अपने जीवन को, परिवारिक जीवन को, शुद्धि के संतुलन के रास्ते पर ले जाएँगे तो वे बनेंगे दीपक स्तंभ। मित्रो ! यह मेरी अध्यात्म को देखने की दृष्टि है। बहुजन समाज को यह प्रिय नहीं होगी उनको तो कोई उद्धार करनेवाला चाहिए। बिना परिश्रम के उद्धार हो जाय, यह इच्छा है। लेकिन जो समझदार लोग है। ५-२५-५० उनके साथ मुझे हृदय खोलके बात करनी है कि ऐसे उद्धार नहीं होते। अवतार कार्य करने के लिए भी अपना उद्धार खुद करने की इच्छा रखनेवाले भक्त चाहिए। खैर ! इस संदर्भ को, इस परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखते हुए चलिए आगे।

सुबह में आज ध्यान प्रवचन में मैंने कहा था कि मनुष्य एकांत में बैठे। अब वह बैठ गया है, बैठना उसने सीख लिया है। शरीर में यदि बैठने में तकलीफ है तो उसने आहार-विहार में परिवर्तन करके कठिनाई को दूर किया है। अब बैठने के बाद पहली बात यह होती है कि जहाँ वह बैठा है वहाँ उसके साथ कोई नहीं है, अकेला वह बैठा है। उसने क्या किया ? किसी का भी शब्द उसको सुनना न पड़े, अपना भी नहीं, दूसरों का भी नहीं। हमारी सारी जिंदगी शब्द की संगत में जाती है, या तो खुद बोलते रहते हैं या दूसरों का बोलना सुनते हैं। कोई बोलनेवाला न हो तो radio को चालू रखते हैं। बोलने का, शब्द सुनने का और शब्द बोलने का व्यसन है। हम सब शब्द-व्यसनी लोग बन गए हैं। तो पहली मुक्ति कहाँ से ? शब्द से। शब्द से मुक्त हुए। कुछ लोग ऐसे हैं कि दिन में एक घण्टा भी वह शब्दमुक्त रह नहीं पाते। हाथ में किताब, कुछ-न-कुछ, कहीं से शब्द को अंदर लें, कान से शब्द को अंदर लें और कोई न हो तो वह अपने आपसे बातें करते हैं ताकि वे शब्द को सुन सकें। यह जो शब्द-जाल का मोह है उसको पहले तोड़ता है मनुष्य एकांत में बैठ कर। अब आप कहेंगे कि शब्द को व्यसन क्यों कहा ? शब्द को गुलामी क्यों कही ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

क्योंकि शब्द में जैसे नाद है, स्वर है वैसे अर्थ भी है। जो निरर्थक शब्द बोलेगा उसको आप पागल कहेंगे और पागल खाने में दाखिल करेंगे। हम लोग जो सुनते हैं और शब्द बोलते हैं, वह है अर्थपूर्ण। कुछ-न-कुछ उसमें अर्थ है, अर्थ के साथ भाव है, क्योंकि जब शब्द का अर्थ आप ग्रहण करते हैं बुद्धि से तो आपका चित्त उसका भाव भी ग्रहण करता है। ये भाव कहाँ से आए शब्दों में ? परंपरा ने शब्दों में भाव भर दिए हैं, इसलिए शब्द सुनते ही अर्थ समझ में आता है और चित्त में उसकी भावात्मक प्रतिक्रिया उठती है। यह अच्छा है, यह बुरा है, यह पापमय है, यह पुण्यमय है, यह अपमान करता है यह सन्मान करता है— ये जो द्वन्द्वात्मक अर्थ हैं, शब्दों के, वे जाग्रत हो गये अन्दर। तो किसी का शब्द सुना और हम कोई शब्द बोलें, उसके अर्थ के साथ भाव न उठें यह नहीं होता।

बोलनेवाले की आवाज, उसकी आँख, नजर, हावभाव यह सब जो है वह अर्थ में भाव को जगा देते हैं तो प्रतिक्रिया उठती है। शब्द को सुनने में केवल सुनना नहीं रह जाता। यह घोड़ा है, घोड़े को देखा और कोई भाव नहीं उठा ऐसे जो निरूपद्रवी शब्द हैं, वह कम होते हैं। किसी का क्रोध व्यक्त होता है, किसी की ईर्ष्या, कोई अपनी स्तुति करता है, कोई किसी की निन्दा करता है, कोई क्रोध करता है कुछ-न-कुछ विकार। हमारे चित्त में विकार भरे हुए होते हैं। इसलिए शब्द में लिपटे हुए हैं विकार, उसको अलग नहीं कर पाते हम। अपने विकार प्रकट करते हैं हम या दूसरों के विकार सुनते हैं। इससे चित्त दूषित होता रहता है और चित्त में प्रतिक्रिया-तरंग उठते रहते हैं, जो हमें बहुत प्रिय हैं। अब क्या हो गया ? शब्द नहीं है वहाँ, नाद है। बाहर यदि पशु हैं, पक्षी हैं, उनके नाद हैं। वृक्ष में से पवन यदि बहता है तो उसका नाद आपको सुनाई देगा। ऐसा न करें कि हम नाद को रोकने की कोशिश में लग जाँय। सुनाई पड़ा, तो सुन लिया। अब जब आपने नाद सुन लिया तो नादों का अर्थ तो करना नहीं है। पक्षी की आवाज सुनी, उसका क्या अर्थ करना है ? उसमें से क्या प्रतिक्रिया उठनी है ? तो चित्त का सुनना और प्रतिक्रिया उठना यह शांत हो गया। अब नाद सुने-पक्षी का सुना, बंसी का सुना, पवन का सुना, पानी का सुना, ये नाद सुने हैं। शब्द से आप कहाँ चले गए ? नाद के क्षेत्र में। नाद में स्वर है, ध्वनि है लेकिन अर्थ जरूरी नहीं है। फिर भी कोयल की आवाज सुनते हैं तो थोड़ा मधुर लगता है, प्रिय लगता है और कौए की आवाज सुनते हैं तो स्वर तीक्ष्ण लगता है तो थोड़ा अर्थघटन चित्त में चलता है। यह तीक्ष्ण है, यह मधुर है, यह रूक्ष है, चित्त में चलता है फिर भी अहंकार को उसके साथ कुछ लेना-देना नहीं है। अहंकार को उसमें सुख-दुःख नहीं होता है इसलिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अहंकेन्द्रित अर्थघटन बन्द हो गया। चित्त की प्रतिक्रिया चलानेवाला क्रम जो रात–दिन चलता था वह बन्द हो गया, वह शांत हो गया।

तो शब्द से आप नाद, स्वर और ध्वनि के क्षेत्र में आए, रहिए वहाँ, जब तक आपको भान रहता है, मैं नाद सुन रहा हूँ, नाद सुन रहा हूँ–भले वहाँ रहे लेकिन अर्थ नहीं लगाना पड़ता है। इसलिए चित्त वहाँ ठहरता नहीं है तो फिर वह क्या करेगा ? बाहर के नाद की तरफ से भीतर के नाद की तरफ मुड़ा। अब है भीतर के नाद। शरीर में अनेक प्रकार के नाद उसको सुनाई देंगे या अनेक प्रकार के प्रकाश की छटाएँ दिखाई देंगी। मनुष्य जब जाकर के मौन में बैठता है तब भले न नाद उसको सुनाई दे भीतर के कान में से, कहीं मस्तक में से, उसको लगता है पता नहीं कहाँ–कहाँ से नाद सुनाई दे रहे हैं तो अहंकार लगा रहता है सुनने में, वह प्रकाश देखने में। अच्छा अब न नाद सुनाई दिए, न प्रकाश दिखाई दिया तो विचार जो है उसके अनुभव, उसके अनुभवों के स्मरण ये सब जो जिया हुआ जीवन है वह सामने आ जाता है, जिसको आप भूतकाल कहते हैं, भूतकाल के स्मरण–स्मृति कहते हैं, वे शब्द से नाद में आए थे।

नाद में से अंतर्नाद में गए। लेकिन बीच में आ गया एक अवरोध। वह यह है कि आप चुपचाप बैठे हैं, वास्तव में वह आपकी गति है मन आपकी आंतर काया है तो आपका जो स्वरूप मौनरूपी दर्पण में दीखने लगा, उसको देखें। उसके न्यायाधीश न बनें, उसके भोक्ता न बनें। यह भला है कि बुरा कुछ न कहें, दीखता है वह देखें, देखने के लिए बैठे नहीं हैं अतएव दीखता है वह देख रहे हैं। यह निर्दोष देखने का अभ्यास होगा, आप करके देखें। यह निर्दोष हो नहीं पाता क्योंकि अपने विकार दीखने लगते हैं। यह देखकर मनमें उदासीनता आ जाती है। अवगुण दीखने लगते हैं, दोष दीखने लगते हैं तो आदमी घबरा जाता है, उसको लगता है कि मैंने मान रखा था कि मैं बड़ा भद्र व्यक्ति हूँ, मैं बड़ा सज्जन बहुत शांत व्यक्ति हूँ और यह क्या है मेरे भीतर ? इतना कचरा पड़ा है। इतनी अमंगलता पड़ी है ? इतने कुविचार पड़े हैं ? तो अपने स्वरूप–दर्शन में आदमी घबरा जाता है। यह वीरों का काम है—

"हरिनो मारग छे शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने,
परथम पेला मस्तक मूकी, वळतुं लेवुं नाम जोने."

यह मस्तक याने अहंकार रूपी जो मस्तक है उसको रखना पड़ता है नीचे। नहीं तो "मैं" "मैं" ऐसी मैंने जो अपनी प्रतिमा बनाई है वह मौन में मन की गतिविधि देखते–देखते टूट जाती है। मेरे मित्रों ने कहा था न कि यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत भला आदमी है। मेरी माँ कहती थीं, मेरी पत्नी कहती है, सब कोई कहते थे और मैं भी मान रहा था तो क्या है अंदर इतना बड़ा कचरा ? इतना कूड़ा करकट ? इतने विकार ? अपना जीवन कैसा है मालूम है ?

वे कॉलेज में पढ़ने वाले बच्चे, लड़के, लड़कियाँ जिनको अपना कमरा साफ करना पड़ता है तो वे कमरा साफ करके कूड़े-कचरे को कमरे में पड़ी हुई दरी के नीचे, शतरंजी के नीचे घुसा देते हैं। अकेले रहनेवाली बहनें, भाई और कितने ही घरों में भी आप देखिए तो कोने में, दरी के नीचे कचरा दबा देते हैं। दमन के नीचे, निरोध के नीचे, निग्रह के नीचे, रूखा-सूखा शिष्टाचार है—aticate है उसके नीचे पता नहीं क्या-क्या दबा हुआ है ? या हमको समय नहीं है हमारी बुराइयाँ देखने का, बुराइयाँ हटाने का। आठ घण्टे, दस घण्टे दुकान का काम करना पड़ता है, हमें नौकरी करनी पड़ती है—संसार को चलाने के लिए झूठ बोलना पड़ता है, बच्चे समझते नहीं हैं इसलिए गुस्सा करना पड़ता है। स्त्री के अज्ञान के सामने, बच्चों की नादानी के सामने, लोग ईर्ष्या करते है इसलिए, समाज की व्यवस्था ऐसी है, सरकार के कानून ऐसे हैं—हमारे पास ढेर कारण है—अपने शरीर, मन और वाणी के दूषित व्यवहार का समर्थन करने के लिए। वह समर्थन करते है, अब समर्थन नहीं है, बचाव नहीं है, बैठे हैं अपने साथ। किसीको अपने साथ बैठना पसंद नहीं आता। कहते हैं भाई! भजन-कीर्तन में ले जाओ। सब मिलकरके जोर-जोर से भजन गाएँ। मंजीरा बजायेंगे, करताल बजायेंगे, तबला बजेगा, मृदंग बजेगा, किसको फुरसत है कि अपनी तरफ देखें ? शब्द का नशा है, स्वर का है, ताल का है, नाच रहे हैं, कूद रहे हैं वहाँ अपने आपको भूल जाना है। आत्म-विस्मृति यह आत्मोपलब्धि नहीं है। मित्रो ! आप मन प्रसन्न करने के लिए भजन गाएँ, हम भी गाते हैं। भजन गाइए, नाचिए, कूदिए कोई बात नहीं है लेकिन वहाँ जो आत्म-विस्मृति है।

"Self-forgetfulness is not self-discovery." आत्म-विस्मृति आत्मोपलब्धि नहीं है। तो अब क्या हुआ मौन में ? आपके सामने आ गया अंदर पड़ा हुआ आपका स्वरूप—इसको देख लेना वीर बनकर, शूर बनकर, धीर बनकर। निन्दा नहीं करना नहीं तो कुछ लोगों के पता नहीं स्वभाव ही ऐसा है कि जरा से दोष दिखें कि आत्म-निंदा में पड जाते है। मैं तो ऐसा ? मुझसे क्या होगा ? हम तो नीच है, हम तो ऐसे है। कोई आके उद्धार करेगा तो होगा। वह दोष देखने के बाद या दिखाने के बाद शक्ति नहीं आती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कि हाँ इनको हटाना है। इसके बदले वह आत्मनिन्दा में, आत्म-ग्लानि में आत्म-दया में चले जाते हैं और उसको वैष्णव धर्म के नाम पर दीनता का समर्थन मिलता है। अरे! यह दीनता नहीं है वैष्णव धर्म का सत्त्व। असहायता, लाचारी और वह प्रभु-भक्तों में ? दीनता, हीनता और नम्रता अलग चीजें हैं। जिनको परिश्रम नहीं करना है वे नम्रता के नाम पर दीन बनके बैठते हैं; तो वह साधना नहीं। लेकिन ऐसे लोग फिर आत्मग्लानि में चले जाते हैं, 'हम तो ऐसे, हमारे माँ-बाप ऐसे थे, हमसे कुछ होनेवाला नहीं है' तो जहाँ अपने दोष का दर्शन हुआ वहाँ दर्शन से सीखने के बदले पलायन का रास्ता उसमें से निकालते हैं।

हम पलायनवादी मनोवृत्ति में आज पड़े हैं। इसलिए इस देश में चालीस लाख नहीं, अड़सठ करोड़ में से (६८) अड़सठ लाख लोग मंदिरों में, देरासरो में गिरजाघरों में, मस्जिदों में जानेवाले होंगे तो भी देश का जनजीवन निस्तेज, निष्प्राण रहेगा क्योंकि उसके जीवन में नम्रता के बदले दीनता है। प्रपत्ति के बदले, शरणागति के बदले दीनता, हीनता, लाचारी है। अरे! शरणागति वीरों का काम है रे! वह लाचार, असहाय व्यक्ति का काम नहीं है।

हमारे स्वामी विवेकानन्द कहते कि यह तमोगुणी देश है, इसमें से पौरुष-पूर्ण रजोगुणी देश बने तो भी मुझे खुशी होगी क्योंकि रजोगुण से फिर सत्त्वगुण में जायेगा। और सत्त्वगुण से "निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।" वहाँ जायगा। लेकिन तमोगुणी आदमी तो रजोगुण के लिए भी तैयार नहीं है। पौरूष के लिए, पराक्रम के लिए, प्रयत्न के लिए, साधना के लिए तैयारी नहीं उसकी जब तक कि कोई सिद्धि सामने न हो।

खैर; अंदर से उठनेवाले विचार, अनुभव, स्मरणशक्ति वे सब देखा। कमजोरियाँ दिखीं, गुण और दोष दिखे—गुण दिखे और अहंकार नहीं आया, दोष दिखने पर दीनता नहीं आई—यह जिज्ञासु का धर्म है। गुण दीखे और अहंकार की उत्तेजना में आए तो अहंकार का दो स्वरूप है या तो वह उत्तेजित होके "मैं दूसरों से श्रेष्ठ हूँ" कहेगा या तो वह दीन बनकर के "मुझसे कुछ नहीं होता" कहेगा। दासत्व और स्वामित्व दो जानता है वह अहंकार। उसको या तो दीन बनने दो तो वह जी जाएगा। दास बनने दो या स्वामी—प्रभुत्व जानता है या दासत्व जानता है। अपने को दासत्व, प्रभुत्व दोनों नहीं चाहिए, अपने को चाहिए सख्यत्व और सहयोग। स्वमान और मैत्री चाहिए। आत्म-सम्मान चाहिए। तो जब ये दीखेंगे दोष वगैरह, दुःख होगा। रोना आया तो भले रो

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लीजिए, लेकिन एक-एक अश्रु पड़े उसमें से आत्म–परिवर्तन की आकांक्षा उठे। आँसु क्षीण बनाने वाले नहीं, शक्ति देनेवाले होंगे यदि वे नम्रता की जाह्नवी में से बहनेवाले आँसू हैं। आत्मा की अभीप्सा में से उठनेवाले यदि आँसू हैं तो फिर वह शक्ति क्षीण नहीं करेंगे, बढ़ायेंगे।

जब तक विचार या अनुभव, शब्द रूप धारण करके सामने आते हैं, बहुत तटस्थभाव से देखें उन्हें। क्या होगा इसमें ? एक तो स्वरूप दर्शन तफसील में हो जायगा। विगतवार स्वरूप दर्शन। वह हो गया तो इसका फायदा क्या ? जब आप आसन से उठकर के घर में अपने पति के साथ, पत्नी के साथ, बच्चों के साथ, नौकर के साथ, पड़ोसियों के साथ बात करेंगे तब आपको मालूम रहेगा कि आपके भीतर क्या-क्या है ? क्या नहीं है ? यदि व्यवहार में कुछ भूल हो जाती है, कभी गुस्सा आएगा, कभी ईर्ष्या आएगी, कभी क्षुद्रता, ये सब विकार जब प्रकट होंगे व्यवहार में तब आपको पता चलेगा कि अरे हाँ ! यह वह क्षुद्रता और पामरता है, जो मैंने देखी थी मौन में बैठे हुए यह अब सामने आई। तो क्षुद्रता प्रकट होगी, या क्रोध प्रकट होगा कि तुरन्त आप उसको पह-चान लेंगे और जिसके साथ व्यवहार में भूल हो गई है, उसकी माफी माँग लेंगे। वह चपरासी है, या आपका अफसर है, अधिकारी है, पति है, पत्नी है, जो भी है वह मनुष्य है और आप मनुष्य हैं। मनुष्य की भूमिका पर रहे बिना साधना नहीं होती है। ओफिस में गए, आप अधिकारी और दूसरा आपके हाथ नीचे काम करनेवाला, लेकिन वे भी मनुष्य हैं, आप भी मनुष्य हैं। आत्मा छोड़ दीजिए लेकिन मनुष्य की भूमिका पर रहके व्यवहार करना हम सीख लें तो आज वातावरण में, परिस्थिति में बहुत अन्तर आएगा।

आपने किसी का अपमान कर दिया, अधीराई में गुस्सा कर लिया, तुरन्त आप क्षमा माँगें कि मेरी भूल हो गई मित्र ! मुझे क्षमा कर दें। जिसने स्वरूप दर्शन नहीं किया उसमें क्षमायाचना की शक्ति नहीं आती। उसका अहं-कार सख्त बनके बैठा है, वह माफी माँगने नहीं देता। और यह चला है ध्यान और अध्यात्म के रास्ते पर। इतनी छोटी-सी बात में भी अहंकार उसको गुलाम बना लेता है। वह तो चौकीदार है, मेरा मातहत Assistant है, मैं माफी नहीं माँगूंगा। अरे भाई ! यह तो एक नाटक है, नाटक की भूमिकाएँ हैं। तू निर्वाह करने चला, वह निर्वाह करने चला। तू M. A., M. Sc. बन गया वह बेचारा इन्टर सायन्स बना। तो नाटक की भूमिका में कोई पत्नी

२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, कोई पुत्र है कोई Assistant है, कोई चपरासी है, कोई साहब है। यह तो नाटक की भूमिकाएँ हैं, roles हैं जो जिन्दगी में अदा करने हैं।

यदि कल समाज में जिसकी जितनी आवश्यकता उतना उसको पारिश्रमिक मिलने लगे तो कौन साहब और कौन चपरासी ? फिर हम कहाँ जाएँगे ? तो आज ही से मनुष्यत्व की भूमिका पर व्यवहार करें। तो जहाँ भूल हुई, कोई भी विकार आया उसे देख लें। विकार परद्रव्य है। मित्रो ! जिसको निजद्रव्य में प्रतिष्ठित रहना है, निजरूप में प्रतिष्ठित होना है, उसको परद्रव्य का जहाँ स्पर्श होगा वहाँ उससे प्रायश्चित करके मुक्त होना है, शुद्ध होना है। कीचड़ लग जाता है, रस्ते पर चलते–चलते तो क्या आप धो नहीं डालते ? वैसे आपकी वाणी से दोष हो गया तो वाणी से क्षमायाचना करके धो डालेंगे न ? यह तो प्रक्षालन का कर्म है क्षमायाचना।

बापू माफ़ी माँग सकते थे। सारे देश के सामने कह सकते थे मेरी हिमालय जितनी बड़ी भूल हो गई। उनको कोई जबरदस्ती थी कि वह माफी माँगे ? लेकिन माफी माँगने की प्रांजलता, निखालसता, हमारे व्यवहार में नहीं है। व्यवहार तो अहंकार के मारे तमोगुणी बनकर जड़ बना बैठा है। दस बार भूल होगी, बीस बार होगी लेकिन मानो वह भूल हुई ही नहीं ऐसा दिखाना है दूसरों को, पाखंड करना है कि मुझसे भूल हुई नहीं और कोई दिखा दें तो उससे नाराज होना है कि क्यों दिखाई भूल ? सब करते हैं, तो मैं भी करता हूँ। यह तो संसारी का लक्षण है, साधक का नहीं।

मैं विद्यार्थी थी और लोक सभा में हमारे परिवार के दो चार व्यक्ति सदस्य थे। Constitute assembly में भी और पार्लियामेंट में भी। तो विद्यार्थी दशा में अनेक बार मैं दिल्ली चली जाती। पार्लियामेंट और Constitution का अभ्यास करने हम चले जाते। एक बार गए और कोई मामला था। सब विस्तार में तो नहीं जाऊँगी लेकिन प्रसंग बड़ा समयोचित याद आ गया। आंबेडकर साहब कुछ बोल गए थे, जिससे हिन्दुओं के चित्त को धक्का पहुँचे। तो जवाहरलालजी उबल पड़े और आंबेडकर साहब को कह दिया। जवाहरलालजी जब उबल पड़ते तो बस उबल ही पड़ते और माफी माँगते तो पूरी तरह से माँगते थे। आंबेडकर साहब निकल के आए तो जो लाउन्ज होता है संसद सदस्यों का वहाँ जाके बैठे थे। मैं भी जाकर उस कैन्टोन में जहाँ लोग चाय, काफी पीते हैं बैठी थी। उस दिन मैं अमेरिका से लौटी थी–world assembly of youth से, जवाहरलालजी से मिलना था, किसी कारण मुलाकात थी, इसलिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसरोज मैं गई थी। आंबेडकर साहब उठे तो मुझे देखना था कि अब वह क्या करेंगे? वह कैन्टीन में बैठे तो मैं भी चुपचाप एक कोने में बैठ गई। देखती क्या हूँ कि बहुत जल्दी-जल्दी चलते हुए जवाहरलालजी आ रहे हैं और आकरके पीछे से आंबेडकर साहब जहाँ बैठे हैं, उनको मालूम नहीं है, वहाँ आकर के कंधे पर हाथ रख दिए। कैन्टीन में चपरासी हैं, बेरर है, कुछ एम. पी. हैं और क्या कह रहा है इतने बड़े देश का प्रधानमन्त्री? "देखिए जी! हमसे भूल हो गई।" आंबेडकर साहब से कह रहे हैं, कंधे पर हाथ रखके, वही प्यार का स्पर्श, मानवता की उष्मा देनेवाला। और कहते हैं "आंबेडकर साहब! हमसे भूल हो गई, गुस्ताखी माफ हो।" कोई जरूरत थी? लेकिन जीवनसाधक के कुछ अंश जवाहरलालजी के व्यक्तित्व में ऐसे गूंथे हुए थे गांधीजी के सहवास के कारण।

अनेकों के उदाहरण दे सकती हूँ लेकिन जानबूझ के, पंडितजी का उदाहरण दे रही हूँ। उनकी मानवता के, निखालसता, प्रांजलता के बचपन में देखे हुए संस्कार हैं। कोई मठ में बैठनेवाला साधु और साधक भी इतनी जल्दी अपने शिष्य की माफी नहीं माँग सकता। यह जो जड़ता और सख्ती आ गई है, चित्त कठोर हो गए हैं हमारे और भूलों को छिपाने में, विकारों को छिपाने में, और विकार है हो नहीं वैसा अपने आपको मनाने में हम पड़ गए हैं इसलिए मैं कहती हूँ कि जिसने स्वरूप दर्शन किया उसके चित्त पर से भार हट गया। उसको छिपाने का कुछ नहीं है। पाखंड का बोझ चित्त पर से दूर हो गया इसलिए चित्त हल्का हो गया। हलके फूल जैसा चित्त हो जाता है। बालक का चित्त कैसा होता है? तरोताजा। नित्य जिनको भार ढोना पड़ता है उनके चित्त दबे हुए रहते हैं। चेहरे पर उनके देखना, भार से दबे हुए हैं। यह अपना पैदा किया हुआ भार ढोते रहते हैं। तो स्वरूप-दर्शन का एक dynamics of human relationships बदलने में फायदा हुआ कि मनुष्य एक दूसरे के संबंध में पाखंड नहीं करेगा और परस्पर भूल का इकरार करके वह प्रांजल, निखालस, निराग्रही बनेगा। हमने निर्दोषता की वह अमूल्य निधि छोड़ दी। निर्दोषता का ऐश्वर्य हम खो चुके हैं, उसको वापस लाना पड़ेगा। ज्ञान की जितनी महत्ता है उतनी ही निर्दोष चित्त की महत्ता है। निर्दोष आनंद, निर्दोष सुख, निर्दोष व्यवहार वाणी का, काया का हम भूल गए हैं, उसको वापस लाना पड़ेगा। तो स्वरूप-दर्शन का यह एक फायदा है।

अब दूसरा फायदा क्या है? आप देखते थे, जो दीखता था वह देख रहे थे तो यह जो दृश्य है, यह देखने की अवस्था है The dimention of

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

observation. यह द्रष्टृत्व, द्रष्टाभाव स्थिर होता जायगा। आज हमारा द्रष्टाभाव स्थिर नहीं है। इसलिए किसी की बात सुनते ही, उसकी बात पूरी होने से पहले बीच में कूद पड़ते हैं हम, क्योंकि चित्त में प्रतिक्रिया है। प्रतिक्रिया अधीराई पैदा करती है, इसलिए बात पूरी सुन पाने से पहले हम अपनी राय बना लेते हैं। संस्थाओं में, संगटनो में, विद्यालयो में, परिवारो में यह जो व्यक्तियों की अधीराई है, दूसरे के तरफ देख नहीं पाते, एक-दूसरे की बात सुन नहीं पाते। बीच में प्रतिक्रिया का आवेग उठा, उस आवेग में विवश हो गये और कूद पड़े, बोल पड़े, वेचारी दूसरी व्यक्ति कहती है, लेकिन मेरी बात तो सुन, मेरी बात तो पूरी करने दो। नहीं, नहीं। क्या पूरी करनी ? मैं समझ गई हूँ सब। आप समझ गए हैं इसलिए उसको कहनेका भी अधिकार नहीं ? व्यक्तियों के संबंधों में हम एक-दूसरेके अधिकार पर आक्रमण करते हैं।

सहनशीलता नहीं है, धीरज नहीं है, प्रतीक्षा नहीं है। जब समय न हो, तब की बात अलग है। लेकिन २४ घण्टों के व्यवहार में हमारी यही अधीराई है, क्योंकि सुनने की क्षमता नहीं है। श्रवण-शीलता नहीं है, श्रवण-क्षमता नहीं है, द्रष्टाभाव नहीं है, तटस्थता नहीं है, इनको लाना पडेगा और मैं कहना चाहती हूँ कि आप तो बैठें है मौन में और व्यवहार में यह जो गुणपरिवर्तन होगा वह प्रकट होगा। इसलिए साधना जीवनविमुख नहीं है। दो-दो घण्टे नहीं ध्यान में दस घण्टे बैठो, मौन में बैठो यदि आपके व्यवहार में कोई गुणपरिवर्तन नहीं हुआ तो आपका दस घण्टे एकांत में बैठना या तो व्यवहार से पलायन है, या भीरुता है, या घोर स्वार्थ है।

अध्यात्म विज्ञान है Science of life। आपने भोजन किया है और आपको तुष्टि-पुष्टि नहीं मिली तो भोजन किस काम का ? आप मौन में बैठे हैं और मौन का गांभीर्य आपकी मुखमुद्रा पर, वाणी के व्यवहार में प्रकट नहीं हुआ तो वह मौन किस काम का ? जैसे करोड़ों रुपये किसी के कमाए हुए बैंक में पड़े हैं और शोषण का आधार बन रहे हैं वैसे दिन के दस-दस घण्टे का ध्यान और मौन आपका व्यर्थ बन रहा है। व्यवहार में उसका कोई लाभ नहीं है। व्यवहार में आप उतने ही असहिष्णु हैं, अधीर हैं, क्रोधी हैं तो वह अध्यात्म किस काम का ? मुझे पता नहीं।

यह विज्ञान है न ? आपने अग्नि पर पानी के साथ चावल रखे और भात सिद्ध नहीं हुआ ? नहीं, हमने बीस दिन से चावल रखा है, उसमें चूल्हा भी जल रहा है, पानी भी है, भात नहीं बना। आप मानेंगे कभी ? अरे ! योग्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रमाण में उसमें यदि अग्नि है, पानी है और चावल है तो भात सिद्ध होना ही चाहिए। ऐसे अध्यात्म में गुणपरिवर्तन व्यक्ति के जीवन में होगा ही होगा। दो में तीन मिलाने से पांच जैसे निश्चित है वैसे मौन के अभ्यास में और ध्यान के अभ्यास में गुणपरिवर्तन निश्चित है। वह मुझे आप से कहना है। लोग यह मानते हैं, मगर जानते नहीं है, इसलिए मौन के नाम से जड़ता में फँसे रहते हैं, मौन के नाम से तन्द्रा और मूर्छा में पड़े रहते हैं। खैर ! यदि व्यक्ति मौन में बैठी है तो स्वरूप-दर्शन, जो मन का दर्शन हुआ उसमें से हम क्या हैं इसकी यथार्थता को देखें। तो एक तरफ से द्रष्टत्व की शक्ति बढी और दूसरी तरफ से विनम्रता बढ़ी। मैं सामाजिक समस्या के साथ आत्मिक साधना का जो अनुबंध है वह आपकी सेवा में रखना चाहती हूँ क्योंकि मेरे दिल में अत्यंत गंभीर व्यथा है आजकी परिस्थिति की।

देश जिस घोर अमावस्या के अंधकार में से गुजर रहा है, उसमें से रास्ता निकालनेवाली यह आत्मिक क्रांति है। सामुदायिक आत्मबल प्रकट करने की वेला है। सामुदायिक आत्म-बल से समाज परिवर्तन की क्रांति की प्रक्रिया निकालने की चुनौती हमारे सामने है। व्यक्ति के आंतरिक जीवन में धर्म और अध्यात्म यदि संपूर्ण क्रांति नहीं लाते हैं तो वह कुछ भी नहीं है। Religion is a total revolution. Meditation is a revolutionary way of living. एक क्रांतिकारी जीवन-पद्धति है, यौगिक जीवन-पद्धति है।

तो आज हम पहुँचे हैं मौन में, जहाँ दीखना और देखना यह जो पर्व है, उससे होनेवाले आनुषंगिक परिणाम मैंने आपको बतलाये। अब यदि आप विनम्र साधक हैं, दीखा सो देख लिया, उसमें से स्वीकार नहीं, अस्वीकार नहीं, भला नहीं, बुरा नहीं, आत्मनिंदा नहीं, आत्मप्रशंसा नहीं, अभिमान नहीं, और साधक आगे चला। तो फिर यह संस्कार, ज्ञान, अनुभूति मर्यादित होने के कारण समय आता है कि वह शांत हो जाता है। कुछ भी दीखता नहीं, दीखना बन्द हो जाता है। क्या हो रहा है यह साधक बतला नहीं सकता। तो दीखना बन्द हुआ इसलिए द्रष्टा शांत हुआ। दृश्य दीखते नहीं है इसलिए द्रष्टत्व भी शांत हुआ। यह अवस्था मौन का प्रारंभ है। मैंने कहा था कि तीन दिन में विषय को समझना है, इसलिए हम चल रहे हैं तीव्र गति से, वैज्ञानिक पद्धति से, जितनी सावधानी से चल सकते हैं उतनी सावधानी से। यह शाब्दिक संवाद है तो जो व्यक्ति दिन में एक बार, दो बार समय निकाल करके, तीन घण्टे का समय दिन में यदि निकालें,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कम से कम ढाई घण्टे का सुबह शाम मिलकर के केवल स्वस्थता से बैठें, कुछ करना नहीं है। कुछ करने के लिए, देखने के लिए, पाने के लिए नहीं बैठे हैं, वह गतिमुक्त अवस्था में प्रवेश करने के लिए बैठा है।

वह शब्द नाद से मुक्त शून्य के स्पर्श के लिए बैठा है। वह सत्ता स्पर्श करेगी, उसको कुछ करना नहीं है। अब हमने प्रारंभ किया। जब बैठे हैं तो वह कुछ करता नहीं है लेकिन शरीर के भीतर कुछ क्रियाएँ चल रही हैं वह उसको दीखेंगी। जैसे जागृति में बाहर के शरीर का दर्शन होता है, स्वदर्शन होता है वैसे आँखें बन्द करके यह शरीर का अंतर स्पर्श है। उसमें मैंने नाद का थोड़ा उल्लेख किया और फिर यह तो संस्कार अङ्कित हैं रक्त के बूँद-बूँद में, हाड़-मांस के कण-कण में संस्कार भरे हैं। मन केवल मस्तिष्क में नहीं है रे ! मन तो सारे शरीर में व्याप्त है, संस्कारों के रूप में। अंग्रेजी में जिसको Conditioning कहते है, सारे शरीर में व्याप्त है। आँखने रूप देखा कि सारे शरीर में व्याप्त संस्कार उछल पड़ते हैं। कान ने शब्द सुना कि वह संस्कार रूपी मन उछल पड़ता है, प्रतिक्रिया करता है, यह प्रक्रिया जीवनभर चलती है, इसलिए उसको हम समझने, देखने बैठें कि भाई ! मन कभी शांत होगा या नहीं ? और मन यदि शांत होता है संस्कार यदि शांत बैठते हैं तो संस्कारों से परे क्या है ? शब्दों से परे क्या ? गति से परे जो जीवन है वह क्या है ? यह देखने, समझने बैठे है, पाने नहीं। वह दीखता गया तब तक देखते गए, संस्कारों का स्वरूप, उनमें से होनेवाले गुणात्मक परिवर्तन का उल्लेख किया और अब हम पहुँचे हैं, इस मुकाम पर जहाँ कुछ भी भीतर दीखता नहीं है। होता नहीं कुछ, अनुभूति होती नहीं, हृदय दीखते नहीं हैं। आदमी बैठा है। यह है शून्य नाम के आयाम का पहला स्पर्श। यह साक्षात्कार है आकाश नाम के तत्त्व का। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु चार तक गति है। तो मौन के शिक्षण के लिए बैठे और द्रष्टाभाव पृथ्वी से वायुतक चला। वायुतत्त्व के कारण संकल्प, विकल्प, विचार, विकार इनका हलन-चलन था।

जब कुछ भी नहीं दीखता इसलिए देखना शांत हुआ तो अब हम पहुँचे हैं आकाश तत्त्व में। यह जो शून्य तत्त्व है वह आकाश तत्त्व है। बाहर भी आकाश है। भीतर भी आकाश है। इस आकाश में या शून्य में मनुष्य के पहुँचने के बाद क्या हो सकता है? और क्या होता है ? इसका जितना वैज्ञानिक निरूपण होगा उतना आपके पास फिर अगले सत्र में करेंगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय को मनोरंजक नहीं बना पाऊँगी। विषय ही ऐसा है। अधिक समय हम साथ होते तो विषय को फैला करके, मनोरंजक बना करके कहा जा सकता है लेकिन यहाँ तो अध्यात्म का वैज्ञानिक स्वरूप आपके पास मुझे रखना है। मौन से आगे ध्यानावस्था है शून्य की गुफा को पार करने के बाद ध्यान है, ध्यान की अवस्था है। शून्य से पहले द्रष्टाभाव, साक्षीभाव है और शून्य से आगे ध्यान है। ध्यान की परिणति केवली अवस्था में है, ध्यान की परिणति निर्ग्रन्थ अवस्था में है। जिसको सहजयोग कहेंगे, सिद्धयोग कहेंगे, वह शून्य के आगे की बात है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रश्नोत्तरी

२०-१-'८२
समय : ३ से ४-३०

प्रश्न १. गति के साथ स्थिति और स्थिति के साथ गति इन दोनों का तालमेल साधक के जीवन में किस प्रकार बैठे ?

उत्तर—गति के साथ स्थिति नहीं भाई ! गति के साथ गति और स्थिति के साथ स्थिति। गति के साथ गति मिलानी और जब गति की आवश्यकता नहीं है तब अपनी सहज स्थिति में रहना। आज होता यह है कि जब गति की आवश्यकता है, हम अटक जाते हैं। जैसे आपके साथ बातचीत कर रहे है और आपने कुछ कह दिया; कोई प्रश्न की चर्चा चल रही है, कोई काम हम मिलकर के साथ में कर रहे हैं और मान लीजिए मैंने आप से कुछ कह दिया वह आप को पसंद नहीं है या आपने कुछ कह दिया वह मुझे पसंद नहीं है। अब काम के साथ पसंदगी नापसंदगी का कोई सम्बन्ध नहीं है, लेकिन आपने कहा मुझे बुरा लगा, अपमान लगा या पसंद नहीं आया यह जो प्रतिक्रिया हुई इसमें मैं अटक गई। तो आपकी मुझे पसंद न आनेवाली बात खतम हुई। आपने मुझे कुछ कह दिया, आप बोल गए; या मैं कुछ बोल गई लेकिन बाद में काम साथ में करना है तो आपका कुछ कहना मुझे पसंद नहीं आया इसलिए या मेरा कुछ कहना आपको पसंद नहीं आया इसलिए पांच मिनट बाद जो काम साथ में करना है, वह हम कर नहीं पाते क्योंकि हम प्रतिक्रिया में अटक गए। हम भूल जाते हैं कि हम साथ में काम करने के लिए इकट्ठे हुए हैं, संस्था में, संगठन में, परिवार में, लेकिन पसंदगी नापसंदगी में अटक गए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ अपमानास्पद लगा, अपमान लगा इसलिए गुस्सा आया, क्रोध आया, क्रोध में अटक गए। तो जीवन या परिस्थिति ने हमें एक जगह काम करने के लिए मिलाया, प्रारब्ध परिवार में हमें साथ ले आया या संस्था, संगठन में स्वेच्छा से एक साथ हम आए—काम रह गया दूर लेकिन मुझे गुस्सा आया तो आपके साथ मैं काम नहीं कर पाई। उसका मतलब है कि गति में हम अपनी गति मिला नहीं पाते, प्रतिक्रियाओं के कारण अटक जाते हैं, इसलिए जी नहीं पाते। फिर कल आपसे मैंने जो कहा था, कल आपको बुरा लगा, आज मुझे देखते ही वह जो बुरा लगा था उसकी याद आती है। आज मैं आपको दुःख नहीं दे रही हूँ या आज आप मुझे कुछ नहीं कर रहे हो, लेकिन कल की जो याद है, उसका भूत सवार है। कल इसने ऐसा कहा था वह जो कल की याद है वह आज में जीने नहीं देती है। भूतकाल की स्मृति वर्तमान काल की परिस्थिति से आवश्यकता से ज्यादा प्रबल हो जाती है, शक्तिशाली हो जाती है। वर्तमान से सम्बन्ध छूट गया, भूतकाल में अटक गए।

अथवा काम करते हुए कोई व्यक्ति पसंद आ गई याने ऐसा लगा कि हाँ यह मेरी बात बराबर समझते है, इनका व्यवहार मुझे प्रिय लगता है, तो अब भविष्य में इस व्यक्ति से मैं कैसे, कहाँ काम ले सकता हूँ इस विचार में चले गए। उस व्यक्ति के प्रति इतना राग हुआ कि वर्तमान की अपेक्षा उसका उपयोग भविष्य में कैसे करना है, इसकी योजना में चित्त चला गया। मेरे मित्रो! सम्बन्धों में जीवन है और सम्बन्ध एक गति का प्रवाह है। जैसे सरिता का जल निरंतर बहता रहता है, वैसे सम्बन्धों में जो गति का प्रवाह है वह बहता रहता है, लेकिन हम अटक जाते हैं। आप कहें क्या कोई कुछ भी कह दें हमें दुःख नहीं होगा? जरूर होगा भाई! दुःख क्यों नहीं होगा? लेकिन वह जो दुःख हुआ या प्रतिक्रिया उठी, उसकी पूजा नहीं करनी है, उसे पकड़ के बैठना नहीं है। दुःख हुआ उसको हजम करना पडेगा। प्रसंग आया, मौका मिला तो दूसरी व्यक्ति की भूल बतला भी देना।

प्रश्न २. मन और माया क्या है? मनुष्य को क्या जरूरी है?

उत्तर—देखो भाई! अब तक मन की बात अपन ने बहुत की। अब प्रश्नकर्त्ता पूछ रहे हैं, माया क्या है? यह 'माया' शब्द आद्य शंकराचार्य के वेदांत में आता है। मिथ्या, माया...ये शब्द आते हैं।

"ब्रह्म सत्यम्, जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वं खलु इदम् ब्रह्म ।

अहम् ब्रह्मास्मि । तत्त्वमसि ।

इतने में भगवान् आद्य शंकराचार्य का समग्र उपदेश आ जाता है । यहाँ मिथ्या और माया दो शब्द शांकर दर्शन के साथ जुड़े हुए हैं। पारिभाषिक शब्द को केवल भावना से देखा नहीं जायेगा। मैंने सुबह कहा था कि जो देश-काल सापेक्ष है, relative है, उसको माया कहा जा सकता है, मिथ्या । एक के लिए, एक समय में जो सच है, वह दूसरे के लिए अन्य समय में सच नहीं भी हो सकता । कैसे ?

एक व्यक्ति के शरीर की पित्तप्रधान प्रकृति है, उसको वैद्य ने कह दिया कि यह आहार करो, यह आरोग्यदायी है । "यह आहार आरोग्यदायी है" यह वैद्य का निवेदन है वह व्यक्तिसापेक्ष है । जिसकी प्रकृति कफप्रधान है वह यदि कहें कि वैद्य ने कहा है कि फलाना आहार आरोग्यदायी है, इसलिए मैं भी करूं तो उसको नुकसान हो सकता है । यह सत्य जो है वह व्यक्ति-सापेक्ष है. दूसरे व्यक्ति के लिए वह नुकसान भी कर सकता है । यह जैसे पदार्थों के बारे में, आहार के बारे में, रंगो के बारे में है उसी प्रकार जो काल-सापेक्ष है, उसको माया कहेंगे। देश-सापेक्ष और काल सापेक्ष माया है । दस साल का लड़का है, आपने उसको देखा था एक रूप में और (१५) पन्द्रह साल फिर नहीं देखा । (१५) पन्द्रह साल बाद मिले तो वह जवान हो गया है। जब देखा था तब दस साल का लड़का था । कोमल, छोटा, कुमार अब वह जवान बना है । तो क्या वह कुमार गलत था ? झूठ था ? और यह जवान सच है ? आप कहते हैं नहीं यह बचपन, कुमारावस्था, और युवावस्था माया है। यानी यह काल सापेक्ष है। पन्द्रह साल के बाद देखोगे तो युवक प्रौढ होगा, और दस साल बाद देखोगे तो प्रौढ को वृद्ध कहना पड़ेगा । तो यह अवस्थाएँ जो है शिशुअवस्था, किशोरावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था यह टिकती नहीं हैं ।

काल सापेक्ष होने के कारण एक ही शरीर में उसका रूप बदलते हैं, जीवन की रुचि बदलती है, सब कुछ बदल जाता है तो यह मिथ्या होने पर, माया होने पर भी टिकनेवाला नहीं है । नश्वर होने पर भी अवस्था अपने समय पर अपना प्रभाव कर जाती है । कुमार की इच्छाएँ, अभीप्साएँ और जवान की इच्छाएँ, अभीप्साएँ एक नहीं हो सकतीं । आप यह नहीं कह सकते कि दस साल का तू था तो तुझे यह प्रिय था इसलिए आज भी यही होना चाहिए। और यदि ऐसा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहें तो वह कहेगा कि बापूजी! मैं तो जवान हो गया। तो जवानी की आकांक्षाएँ आई और वह जो उसकी उछल-कूद थी वह नहीं रहेगी। चालीस साल में वह नहीं रहेगा जो बीस में था। जो नित्य परिवर्तनशील है, वह टिकता नहीं है। उसको कहा माया।

Relative to time and space that which is unsteady constantly changing. माया का यह एक अर्थ हुआ। दूसरा है—

"यया मीयते सा माया" जिसकी रंग, रूप, रस, गंध की अनंतता देखकर प्रभु के ऐश्वर्य का माप निकल सकता है। जिसके ऐश्वर्य को देखकर उसको धारण करने वाली जो सत्ता है परमात्मा की वह कितनी महान होगी? इसका अंदाज आता है, उसको माया कहा। यानी यह जो विविधता है, अनंतता है यह भले न टिकें पलभर भी। पारिजात का फूल कितना टिकता है? बहुत थोड़ा समय और फिर मुरझा जाता है। इसके खिलने और मुरझाने में जो एक घड़ी, दो घड़ी है इसमें जो लावण्य प्रकट कर जाता है, उसमें जो सुगंध दे जाता है वह तो सनातन जीवन का ऐश्वर्य है। वह जो घड़ी-दो घड़ी का सौंदर्य-लावण्य है वह सनातन है। वह जीवन की अमृतमयी सत्ता का ही एक उन्मेष है। तो कहते हैं कि युवावस्था का यौवन नश्वर होने पर भी आत्मा की अमरता का लावण्य, तेज, खुमारी, ऐश्वर्य उस युवावस्था में चमक जाता है। तो माया का यह दूसरा अर्थ है—क्योंकि आत्मा की, परमात्मा की सत्ता अव्यक्त है, अनंत है, जो व्यक्त है उस पर से अनंत के ऐश्वर्य का अंदाज आता है।

तीसरा अर्थ बड़ा मधुर है। वह यह कहते हैं कि प्रभु को एक रहना अच्छा नहीं लगा तो चाहा "एकोऽहम् बहुस्याम्।" एकाकी रहने में कुछ क्रीड़ा हो न सकी इसलिए प्रभु ने अपने भीतर की शक्तियों को प्रकट कर दिया। "यह जो विश्व सारा है वह प्रभु की शक्ति का पसारा है।" मिथ्या नहीं है, झूठा नहीं है, false नहीं है। कालसापेक्ष है, लेकिन झूठा नहीं है। तो शिव के साथ जैसे शक्ति रहती है वैसे ब्रह्म के साथ माया रहती है। इसको महर्षि अरविंद ने माहेश्वरी महाशारदा, महालक्ष्मी, महाकाली के रूप से वर्णन किया है। जहाँ जहाँ सत्ता होगी वहाँ वहाँ उसकी शक्ति प्रकट होती है। शक्ति प्रकट हुई उसको माया कह दिया। सदाशिव और साम्बशिव, अम्ब के साथ शिव। तो विश्व को साम्बशिव कहा है। निर्गुण, निराकार को सदाशिव कहा है। हमारे पूर्वज बड़े रसिक, जीवन-रसिक होने के कारण अलग-अलग ढंग से यथार्थता को देखते हैं। अलग ढंग से उसका काव्य करते हैं, वर्णन करते हैं, गीत गाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आपने पूछा माया क्या है ? माया वह है जो नित्य–परिवर्तनशील है। नित्य परिवर्तनशील होने के कारण पलभर के लिए भी स्थिर नहीं है। उसका बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया जाता है। जाकर नदी के प्रवाह में हाथ रखो। हाथ रखा, निकाला और दूसरी बार हाथ डाला तब तक वह जल बह गया। अब जो आपका हाथ आप डालते हैं वह वही जल नहीं है जो पलभर पहले आपने डाला था। वह तो बह गया। जैसे सरिता का जल निरंतर बहता है, प्रवाह में कुछ भी स्थिर नहीं है। तो जितने–पदार्थ परिवर्तनशील है उनको माया कहा है। इसी को बौद्धों ने कहा–'सर्वम् अनित्यम्, सर्वम् क्षणिकम्, सर्वम् दुःखम् ॥" यह जो नित्य परिवर्तनशील है उसे पकड़ने जाओगे और कहोगे कि परिवर्तन नहीं होना चाहिए। जवानी मुझे प्रिय लगती है, मेरा शरीर बूढ़ा न बनें। जवानी को पकड़ रखने की कोशिश करेंगे तो विकृतियों के सिवा और कुछ पानेवाले नहीं है, क्योंकि जवानी का आनन्द ही इसमें है कि वह आती है और जाती है। उसका मजा ही इसमें है कि वह आती और चली जाती है। जीवन का मजा ही इसलिए है कि मृत्यु है, वह हमें हमेशा तरोताजा रखता है। कहने का अर्थ यह है कि नित्य परिवर्तनशीलता यह जो स्वरूप का अंग है, पहलू है उसको माया कहा।

प्रश्न—हमने बहुत व्याख्यान सुनें, कितनी धर्मकथाएँ सुनी, मन उलझन में पड़ा व्याकुल है। कोई सरल रास्ता बताइए जो हम जनसमुदाय समझ सकें और आचार में ले सकें।

उत्तर—एक तो मैं जनसमुदाय के पास बैठी नहीं हूँ। यह ध्यान शिविर है और ध्यान शिविर के लिए हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं। दूसरी बात मनुष्य को जब तक पता न चले कि क्या चाहिए ? तबतक जिसको आपने यह कहा है कि मन परेशान है समझ नहीं पाओगे। जब तक पता न चले कि अपने को क्या चाहिए तब तक एक नहीं, दस नहीं, सौ धर्मकथाएँ सुनें या पांच सौ व्याख्यान सुनें तो भी कुछ होनेवाला नहीं। असंतोष मिटनेवाला नहीं। हमको पता चलना चाहिए कि धर्म के अध्यात्म के नाम से क्या चाहिए ? निराशा है, हताशा है, आश्रय चाहिए ? मानसिक सहारा चाहिए ? तो वह मानसिक सहारा ढूँढेगा। जहाँ सहारा मिलेगा वहाँ व्यक्ति चली जायेगी। जिसको संसार में संपत्ति, संतति, प्रतिष्ठा, सत्ता चाहिए तो अनेक शास्त्र है उनकी मदद से वह व्यक्ति अपनी अभिलाषा पूरी कर सकते हैं। इसलिए मेरा तो यह मानना है कि कहीं भी धर्मकथा में, भागवत, रामायण या व्याख्यानों में जाने से पहले मनुष्य अपने आपको पूछे कि मैं वहाँ क्यों जा रहा हूँ ? सुनने के लिए क्यों जा रहा हूँ ? क्या चाहिए ? उसका पता कर लें। मालूम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हो जाय कि मुझे यह चाहिए तो फिर उस दिशा में जाने वाली व्यक्तिओं का संग पकड़े ।

जैसे Law का अभ्यास करना है तो लड़का Medical College में नहीं जाता और Engineer बनना है तो Arts College में नहीं जाता। वैसे साधनानाम् अनेकता। भारत देश में अध्यात्म साधना के अनेक प्रकार हैं। हठयोग से जाना है तो हठयोग क्या है? शरीर के शुद्धिकरण का रास्ता है। "योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः।" तो चित्तवृत्ति का निरोध हो सके ऐसी शरीर शुद्धि करने का मार्ग वहाँ खुलता है। नहीं हमें तो केवल भजन-पूजन में आनन्द आता है। तो भक्ति योग को पकड़ें, वहाँ प्रारंभ करें। नहीं हम तो भाई! कर्मयोग से चलेंगे। हमारा मन एक जगह बैठता नहीं है, सेवा करेंगे। तो वह व्यक्ति सेवायोग या कर्मयोग को पकड़ेगी। लेकिन सेवा में प्रेम है, मनमें सेवा की इच्छा है और चलते हैं ज्ञान मार्ग के पास, द्वैत, अद्वैत, वेदांत, उपनिषद ये सब सुनने के लिए तो उसको वहाँ संतोष मिलनेवाला नहीं है। ज्ञानयोग, ध्यानयोग, हठयोग, राजयोग, कर्मयोग इतने रास्ते बना के रखे हैं। अपने को कहाँ जाना है? अपना पिंड क्या है? अपने संस्कार कौन से हैं? सगुण की प्रीति है या निर्गुण की? विचार की प्रीति है कि निर्विचार में-जाने की प्रीति है? यह देखकर के यदि साधना का मार्ग तय करें तो अच्छा ।

अब प्रश्नकर्त्ता उठाता है जनसमुदाय की बात। तो जनसमुदायों के पास मैं तो दूसरे ही प्रकार से बोलती हूँ। मैंने नहीं माना था कि यह जनसमुदाय के लिए बोलने का स्थान है। आज हिंदुस्तान भर में जरूरत है भाई! मनुष्य बनो। मनुष्य बने रहो। मनुष्यता नष्ट हो रही है इसलिए मनुष्य बने रहने का पुरुषार्थ करो यह एक ही धर्म है। बाकी सब धर्मों को अलग रख के हम मानव धर्म को पहले पकड़ें। मनुष्य बनें। तो मनुष्य बनें और मनुष्य रहें का क्या अर्थ है? मनुष्य को परमात्मा ने जैसे हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक दिए हैं, वैसे सोचने की शक्ति भी दी है। तो सोच करके अपनी समझ के अनुसार जिएँ यह है मनुष्यता का मर्म। कोई हमको हांके और हम हांके हुए चले जाँय, कोई डरावें और हम डर जाँय, कोई दबावें और हम दब जाँय! क्यों? हम पशु तो नहीं हैं। पत्थर भी नहीं है कि कोई उठाकर यहाँ से वहाँ रख दें। हम डरे हुए, हांके हुए चले जाँय इसमें कोई मनुष्यता नहीं है। तो हम डरें नहीं, डराएं नहीं, दबें नहीं, दबाएं नहीं, सोच करके, समझ करके जीने का मनुष्य का जो धर्म है उसका पालन करो। यहाँ से हम शुरू करेंगे न?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज यह तो बड़ी–बड़ी आधा, पौन घण्टा बात चली यह कहने की जरूरत नहीं। जनसमुदाय के पास बात करनी है कि इस देश में कोई नंगा, भूखा न रहें, ऐसा अर्थतंत्र हम किस प्रकार लाएँ ? सौ साल पहले विवेकानन्द कह गए कि यदि भगवान को आना पड़ेगा तो रोटी बनकर आना पड़ेगा। और चालीस प्रतिशत लोग यदि नंगे-भूखे हैं तो जनसमुदाय के पास उसी ढंग से बात रखनी पड़ेगी।

इसलिए तो इस देश में आध्यात्मिक शिविर, ध्यान शिबिर बहुत कम चलाती हूँ। कार्यकर्ता शिविर चलाते हैं और दूसरे काम चलाते हैं। मेरे देश में ४०% लोगों को एक शाम भी खाने को नहीं मिलता इसको हम कैसे दूर करेंगे ? यह मानव धर्म का दूसरा अंग है। तो भाई ! जनसमुदाय की बातें तो अलग होंगी। भ्रष्टाचार स्वयं न करें। भ्रष्टाचार को कैसे रोकें ? आज नैतिक मूल्यों का अधः पतन है तो इसको किस प्रकार रोकेंगे ? उसके लिए परिवार में क्या व्रत लेंगे ? संस्था संगठनों में क्या नियम लेंगे ? यह सोचना पड़ेगा। आज मनुष्य डर गया है आतंक से, अन्याय, अत्याचार के वातावरण से। इसलिए वह कहता है कि चलो भाई ! जरा रामायण में बैठें, भागवत में बैठें, प्रभु आएंगे, प्रभु करेंगे तो उसको लगता है कि सान्त्वना मिली, कुछ सहारा मिला। शरीर से मनुष्य आकृति मिली है, आशय से मनुष्य बनो। आकार से मनुष्य हो, आशय से मनुष्य बनो। मनुष्य याने स्वसंवेद्यता। मैं कौन हूं ? क्या कर रहा हूं ? यह जानने की शक्ति परमात्मा ने दी है उसका उपयोग करें। मनुष्य का गौरव बढ़ायें।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय प्रवचन

२१-१-'८२

ध्यान जैसे एक शब्द है, वैसे धारणा नाम का भी एक शब्द है। ध्यान करना नहीं पड़ता, धारणा करनी पड़ती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान यह विकास का क्रम है। धारणा करनी पड़ती है धारण शक्ति को बढ़ाने के लिए। आजकल धारणा की क्रिया का बड़ा बोलबाला है, बड़ा महिमा है। धारणा का अभ्यास कैसे किया जाता है? सब इन्द्रियों की शक्ति और वृत्ति मन में खींच लेना, एकाग्र करना। वह मन को, इन्द्रियों की शक्ति किसी एक पदार्थ पर लगाना, एक बिन्दू पर लगाना, English में जिसको Concentration कहा जाता है तो अपनी आँखों के सामने जो रूप प्रिय हो प्रभु का उसकी छवि रख ली, विग्रह रखा, दीपक जलाकर उसकी ज्योति रखी। धारणा के अभ्यास के लिए कुछ-न-कुछ विषय चाहिए। धारणा एक मानसिक क्रिया है। आप इन्द्रियों की शक्ति, प्राणों की शक्ति, मन की शक्ति एकाग्र करके एक विषय पर लगाते हैं लेकिन धारणा को कृपा करके ध्यान मत समझें। सारी दुनिया में सिखाते हैं धारणा का अभ्यास और कहते हैं हम ध्यान का अभ्यास करा रहे हैं। जैसे मौन के लिए कोई प्रक्रिया नहीं है। आप शांति से बैठ जाँय, मन को शांत होने दें। आप मन को शांत नहीं कर सकेंगे क्योंकि मन आपका ही अंतरंग है।

तो मौन का अभ्यास नहीं होता, प्रेम का अभ्यास नहीं होता। प्रेम को जाग्रत होने दें तो वह जाग्रत होगा। मन को जाग्रत होने देंगे, शांत होने देंगे, अवसर देंगे, समय देंगे, अनुकूलता देंगे अपनी जीवन पद्धति में तो मन शांत होगा। वैसे धारणा का तो अभ्यास करना पड़ता है। जो त्राटक का अभ्यास करते हैं घण्टों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तक, दिनों तक, वर्षों तक, वह शक्ति कमाने के लिए करते हैं तो दूसरों के विचार दूसरे बोलें उससे पहले समझ लेना, पकड़ लेना। एक जगह बैठे दूर का देखना, दूर का सुनना स्पंदन होते हैं, आपके मन में विचार उठा नाभि से लेके, आपकी आँख तक एक गति पैदा होती है और जो भाव होगा उसके रंग होते हैं क्योंकि विचार आपके भीतर पैदा हुआ कि आपके शरीर के आसपास एक विशिष्ट रंग का वलय फैलता है 'ऑरा' जिसको कहते हैं। तो जिस व्यक्ति ने अभ्यास किया त्राटक का वह दूसरों के विचार पहचान लेगा। यहाँ से १० मील, सौ मील पर क्या हो रहा है वह देख पाएगा लेकिन यह तो त्राटक के अभ्यास में से आने वाली सिद्धियाँ हैं।

विद्यालय, महाविद्यालय में आज जो मानसिक कमजोरी है, जितने शरीर क्षीण नहीं उतनी बुद्धि और मन क्षीण हो गए हैं। anaemic minds, anaemic brains। बच्चे कुछ भी सहन नहीं कर पाते। तो यह जो सहनशीलता का अभाव, कमजोरी, स्मरणशक्ति का अभाव है—इन बीमारियों को दूर करने के लिए, इन्द्रियों को शांति देने के लिए, मन को सशक्त बनाने के लिए धारणा शक्ति का अभ्यास आवश्यक है। विद्यालय में वह कराया जा सकता है, यह शिक्षण का एक अंग होना चाहिए।

किन्तु मित्रो ! यह ध्यान नहीं है। ध्यान याने मन की सब गतियों का शांत होना और शांत होने देना। चेतन, अचेतन सभी गतियों का, अपनी स्वेच्छा से पैदा की हुई गति और आनुवंशिक गति इनको शांत होने देना पड़ता है। कैसे शांत होने देंगे।

कल अपन द्रष्टाभाव से मौन तक पहुँचे थे। यह जो मौन रहने का और द्रष्टाभाव का observation का अभ्यास है यह दिन में २४ घण्टे रहे। एक जीने की ऐसी पद्धति बना लेता है मनुष्य कि अभ्यास अपने आप हो जाता है। उदाहरणार्थ—आवश्यकता है तब ही बोलेगा, आवश्यकता है उतना ही बोलेगा। तो वाणी के दोष अपने आप टल जाएँगे। हम जबान खोलते हैं तो या तो आत्मश्लाघा यानी आत्मप्रशंसा होती है या परनिन्दा होती है। 'आत्मश्लाघा परनिन्दा च।" ये दोनों अपराध पांच मिनट जबान खोलें तो अपने से हो जाते हैं। किसी न किसी प्रकार से अपनी प्रशंसा का गाना। किसी न किसी प्रकार से दूसरों के दोष दिखाना। तो जो वाणी का संयम करेगा, आवश्यकता है तभी वाणी खोलेगा, आवश्यकता नहीं है तो वाणी को मौन रखेगा, उसका संयम का अभ्यास बढ़ेगा और वाणी में स्वच्छन्द का अपराध है वह टल जाएगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूसरी बात अतिशयोक्ति करना या संदिग्धता रखना—स्पष्टता नहीं करना यह भी वाणी का अपराध है, कोई निश्चित अर्थ मेरे शब्द का निकाल ही न सके, क्योंकि जरूरत पड़े तब मैं कहूँ कि मेरा यह अर्थ था, या नहीं था। इसलिए मनुष्य वाणी में स्पष्ट नहीं रहता, विशद नहीं रहता, संदिग्ध रहता है। जहाँ संदिग्ध नहीं रहता वहाँ अतिशयोक्ति करता है। वाणी के अनेक दोष हैं—अत्योक्ति, अत्युक्ति, संदिग्धता यह सब मौन से टल जाते हैं दिनभर के व्यवहार में। जिसको जीवन पद्धति में ध्यान की तरफ जाना है वह यह नहीं करेगा कि दिन में चार घण्टे तो मौन में बैठे और बाकी बोलना है तो अति वाचालता की। तो यह अति-वाचालता जो है, वहाँ से हट करके उस व्यक्ति के जीवन में संयम आएगा यानी मौन आता चला जायगा।

तीसरी बात यह है कि वाणी जब अधिक से अधिक मौन रहने लगती है—तो बिना कारण मनुष्य दिनभर के व्यवहार में नहीं बोलता, शब्द-जंजाल नहीं करता, शब्दों का पसारा नहीं करेगा, चार शब्द में कहने की बात के लिए वह चालीस शब्द नहीं लगाता। कुत्ते की पूंछ हिलती है, वैसी अपनी जबान को हिलने नहीं देता है। शांत रहता है तो होता यह है कि निर्विचार अवस्था उसके लिए सहज हो जाती है। आखिर मनुष्य को करना क्या है? यह निर्विचार अवस्था, निर्विकार अवस्था, वीतराग अवस्था की तरफ बढ़ना है। पदार्थों के साथ, व्यक्तियों के साथ, प्रारब्ध के कारण जितना सम्बन्ध आया उस सम्बन्ध में जीना और सम्बन्ध में से गुजर जाना।

कर्म करना किस लिए? पुराने कर्म का क्षय करने के लिए—कर्मनिर्जरा हो जाय इसलिए कर्म करना है। इस ढंग से कर्म करें कि नया कर्म पैदा न हो, नया कर्मबंध, नया प्रारब्ध पैदा न हो इस ढंग से कर्म करना तो कर्म चित्तशुद्धि-कारक भी बनें और मुक्तिदायक भी। शब्द इस ढंग से बोलें कि नया शब्द-बंध पैदा नहीं हो और जो शब्द भीतर पड़े हैं उनसे धीरे-धीरे वह मुक्त होता चला जायगा। संसार में भारतवर्ष एक ही देश है जिसने मनुष्य के लिए वीतराग अवस्था ध्येय कहा है।

> "प्रजहाति यदा कामान्, सर्वान् पार्थ! मनोगतान्।
> आत्मन्येवात्मना तुष्टः, स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥"

मन में पदार्थ के साथ संबंध आते ही राग या द्वेष पैदा होता है, वह पैदा न हो। निर्विकार, निर्विचार मन स्वस्थ मन है। यह शांत मन है, निरामय है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्दोष है। तो मन रहेगा लेकिन मन में जो दोष है, आदत है—पदार्थों का, व्यक्तिओं का सम्बन्ध आते ही राग या द्वेष पैदा करता है, कर्म करके उसमें से मुक्त नहीं हो जाता, कर्म करते-करते राग को द्वेष को पैदा करता है, यह न रहे। ध्यानावस्था का एक लाभ यह है कि चित्त निर्विकार और निर्विचार रहे और वीतराग रहकर व्यवहार कर सके, यह अपने जीवन का ध्येय है। इसलिए चलिए वापस मौन पर।

मौन में न कुछ दीखता है, न कोई दिखानेवाला है। चौबीस घण्टों में हम कुछ न कुछ करते हैं, देखते हैं, पाते हैं, अनुभव करते हैं, प्रतिक्रिया करते हैं, दूसरों से कुछ करते रहते हैं, दूसरों से कुछ कराते रहते हैं। इसी कर्ता-भोक्ता भाव में जिंदगी बह जाती है। यहाँ क्या हो गया अब? दीखता नहीं कुछ। क्योंकि हम देख रहे थे—संस्कारों को देखा, संस्कारों को देखने मात्र के उपभोग से, उसकी आसक्ति से अलग हो गए। अपने मन में भीतर क्या-क्या पड़ा है, इसको हमने तटस्थता से देखा तो वह एक प्रकार से सूक्ष्म भोग हुआ। 'प्रारब्धस्य भोगात् एव क्षयः।' कहते हैं प्रारब्ध भोग करके उसका क्षय करना है तो यह देखना सूक्ष्म भोग हुआ। इसलिए उसके साथ जो तदात्मता थी identification उसके साथ ऐक्यभाव था—मेरा सुख, मेरा दुःख, मेरे गुण, मेरे अवगुण यह जो मेरेपन का भाव था वह हट गया। अंदर गुण रहे, दोष रहे, लेकिन उसके साथ जो ममभाव था, उसकी स्मृति रही लेकिन तदात्मता नहीं रही। लोगों को अपने दोषों का भी अहंकार रहता है। बीमारियाँ आईं तो मुझे इतनी बीमारियाँ आईं। किसी और को नहीं आई होंगी तो अपने उपर आई बीमारियों का भी एक प्रकार का अहंकार है। मेरी बीमारी, मेरा दुःख, मेरी गरीबी, मेरे संकट। अब क्या रह गया? देखने के बाद स्मृति रही लेकिन तदात्मता नहीं रही। मित्रो! मुक्ति जो है वह केवल तदात्मता से मुक्ति है। देह के साथ जो ऐक्यभाव है, देहभाव है, उससे मुक्त होता है। देह रहेगा, देह के साथ जो 'मैं देह हूँ, मैं देह हूँ' यह ममभाव है वह शांत होगा। मेरे गुण, मेरे दोष यह ममभाव चला जायगा। तो आकाश में जैसे बादल देखते हैं, आए और चले गए वैसे दोष दीखेंगे तो अरे! यह दोष आ गया है तो फिर दोष से मुक्त रहने में सुविधा रहेगी। मैं कहना यह चाहती थी कि संस्कारों को देख लिया और वह अनन्त न होने के कारण, या शांत होने के कारण एक अवस्था आ जाती है कि अब दृश्य कुछ भी नहीं है।

आप झट पूछेंगे कि वह अवस्था कब आती है? तो वह व्यक्ति पर निर्भर है। जो व्यक्ति जितना जल्दी अभ्यास बढ़ायेगा उतनी यह दृश्य रहित और द्रष्टा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहित अवस्था जल्दी आएगी। स्वभाव उत्कट होगा, शरीर में ताकत आएगी तो यह देखने के observation के फल में से वह जल्दी मुक्त हो जायगा। उत्कटता होगी और समय ज्यादा देते है तो अवस्था जल्दी आएगी। यह व्यक्ति पर निर्भर है।

तो अब जो मौन अवस्था है अंदर के अवकाश में, शून्य में मनुष्य पहुँच गया है। विचार का दबाव नहीं है, किसी भावना का तनाव नहीं है। आप के शरीर को तनावमुक्त और दबावमुक्त अवस्था मालूम ही नहीं है। अरे! जाग्रत हैं तो जाग्रति में स्वप्न ही देखते रहते है, सोने गए और स्वप्न देखते रहते हैं। भले आदमी उठते हैं तो स्वप्न की एक मालिका देखकर उठे हैं। ताजगी नहीं है, निद्रा में भी मन का विश्राम नहीं है। ऐसी हमारी हालत है जो निद्रा में भी स्वप्न देखते है, जाग्रति में भी स्वप्न देखते हैं, मन चलता ही रहता है। मौन में मन को संपूर्ण विश्राम है, total relaxation, यह जो विश्राम है, शून्य में प्रतिष्ठित होने से, मौन में प्रतिष्ठित होने से एक बहुत बड़ा चमत्कार उस व्यक्ति के शरीर में घटित होता है। आप उस व्यक्ति से बात करेंगे तब ही वह व्यक्ति बोलेगी। जब बोलना पड़ता है तब ही बुद्धि मन का उपयोग करेगी। और नहीं तो? अंदर जो शून्य, मौन की गुफा है उस गुफा में पड़ा है। बाहर से व्यक्ति आप के जैसा ही दीखेगा, हमारे जैसा ही दीखेगा लेकिन फर्क यहाँ है कि अंदर से उसका मन जरा भी हिलता-डुलता नहीं है। क्योंकि इसका डेरा मन पर से हट करके मौन में चला गया। अब यह डेरा मौन में, शून्य में, घट के आकाश में चला गया।

कल मैंने कहा था कि व्यक्ति आकाश-तत्त्व में पहुँची है। विचार सो गए हैं, शब्द सो गए हैं, नाद का लोप है। और निरभ्र आकाश है। शरद ऋतु का आकाश कैसा होता है? एक भी बादल नहीं है। शरद ऋतु में पानी का प्रवाह कैसे होता है? उसमें मल नहीं है। चौमासे की नदी देखिये और शरद ऋतु में वही नदी देख लीजिए—पानी कैसा स्वच्छ, सुन्दर पारदर्शी कि नीचे तल में क्या पड़ा है, दीख पड़े। तो शरद ऋतु की सरिता है, शरद ऋतु का निरभ्र आकाश है वैसे मौन में स्थिर रहनेवाले व्यक्ति का चित्त निर्मल है।

"सत्संगत्वे निःसंगत्वम् निःसंगत्वे निर्मलतत्त्वम् ।"

सत्संग का सबसे बड़ा लाभ कि व्यक्ति का चित्त कहीं भी लिपटा हुआ नहीं है।

"ध्यायतो विषयान् पुंसः, सङ्गस्तेषूपजायते ।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषयों का ध्यान करने से, निदिध्यास करने से, चिन्तन करने से संग उत्पन्न होता है। व्यक्ति ने अब चिन्तन छोड़ दिया है। एक आत्मा का चिन्तन है और कुछ नहीं। बाकी तो देहगत कर्तव्य है और चिन्तन आत्मा का। आत्मलक्षी दृष्टि है, आत्मलक्षी वृत्ति है। आत्मा का ही चिन्तन होने से—जिस वस्तु का चिन्तन हो वैसे ही गुण पैदा होते हैं तो नित्य शुद्ध, बुद्ध आत्मा का चिन्तन करते रहने से उसका चित्त निर्मल बनता है !

मुझे यह कहना था कि व्यक्ति आकाश तत्त्व में पहुँच गई है, शब्द सो गए हैं नाद लुप्त है, निस्तरंग—निष्कंप चित्त है, कंप नहीं है उसमें—कंपन नहीं है, स्पंदन नहीं है। निस्तरंग, निष्कंप, निस्पंद यह जो शब्द आए है न भाषा में ! अवस्था न हो तो शब्द कहाँ से आए ? निस्तरंग, निष्पंद, निष्कंप, नीरव —जिसमें रव नहीं है, नाद नहीं है, स्वर नहीं है, ध्वनि नहीं है, ऐसी अवस्था है उसका अनुभव करनेवाले लोग हुए होंगे तब भाषा में शब्द आए। अब यह जो विचार के दबाव, तनाव हैं, ये हट जाते हैं, इससे भीतर जो आकाश है, अपनी जो हड्डियाँ हैं, इनके भीतर भी पोलापन है, रक्त के एक—एक बूँद में space है—जैसे plasma है, रक्त है, वैसे उसमें भी space है याने शून्य है। अपने भीतर बहुत बड़ा देहाकार शून्य या आकाश है। अब इस आकाश में एक तरफ मन को विश्रांति मिली, एक तरफ तनाव, दबाव से मुक्ति मिली। एक तरफ से मनभाव से मुक्त होकर चित्त निःसंग, निर्मल बन जाता है। निर्मल अवस्था में जो चमत्कार घटित होता है घट के भीतर, उसको देखिए। जैसे बाहर आकाश दीखता है, वैसे भीतर आकाश देखा जा सकता है, और देखनेवाले उसे भी देख लेते हैं। यह जो आकाश है, उसमें ऊर्जा है, बाहर के आकाश में ऊर्जाएँ है। इस कमरे के आकाश में आप रेडियो रख दीजिए तो संगीत सुनाई देगा। अभी नहीं सुनाई देता, लेकिन सुनाई देगा। इसमें जो प्रकाश है, आपके और मेरे आसपास जो आकाश है, space है इसमें प्रकाश का नाद है, सुगंध भी है। इस सुगंध को खींचनेवाले यन्त्र यदि आप के पास हों तो उस सुगंध को materialise करके दिखा देंगे। उस प्रकाश को खींचनेवाले यन्त्र हों तो किस रंग का प्रकाश है इसको भी materialise करके दिखा देंगे। नाद को भी पकड़ करके दिखा देंगे। तो नाद का पकड़ने वाला रेडियो आप का वह देता है। यह मैं विज्ञान की बातें कर रही हूँ।

भीतर जो आकाश है, उसमें अनन्त प्रकार की ऊर्जाएँ है जो संस्कारों से मुक्त हैं। मन नाम का हिस्सा, शरीर नाम का हिस्सा, जितने पदार्थ हैं शरीर में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हाड, मांस, मज्जा, अस्थि, रक्त, वायु यह सब संस्कारों से भरे हुए हैं और इनसे मुक्त शून्य यानें space है यह संस्कारमुक्त है। अपना एक अंग संस्कारयुक्त है, और एक अंग–संस्कारमुक्त है। संस्कारयुक्त चेतना को मन कहो, बुद्धि कहो। संस्कारमुक्त चेतनाको प्रज्ञा कहो, पश्यन्ती वाक् कहो, English में इसको intelligence कहते हैं। उसको संवेदनशीलता कहो। संस्कारमुक्त चेतना आनुवंशिक नहीं है, यहां कोई संस्कार नहीं है। आकाश में जैसे कोई संस्कार नहीं होता, वैसे भीतर के आकाश में भी संस्कार नहीं, ऊर्जाएँ है, संस्कारमुक्त ऊर्जाएँ हैं। तो अपनी सुविधा के लिए, संवाद के लिए अपन प्रज्ञा कहें। उसको संवेदनशीलता कहें। perceptive intelligence या उसको आप intelligent sensitivity कहो। जीवन में जो संजीवन शक्ति है, ज्ञान का स्वभाव है वह भीतर के आकाश में है।

अब क्या हुआ? जो मौन में प्रतिष्ठित हुआ उसको आकाश में जो ऊर्जा है उसका लाभ मिलना शुरू होता है। वह लाभ अभी हमें नहीं मिल रहा है, क्योंकि हम देहभाव में, अहंभाव में, मन की तदात्मता में पड़े हुए है। पदार्थों के साथ सम्बन्ध है उसको जो रहे हैं। रक्त को शुद्ध बना रहे हैं, वायु को शुद्ध बना रहे हैं, अस्थि–मज्जा को शुद्ध बना रहे हैं, जरूर बनाएँ, बनाना भी है। उसको संयम में लाना है, इनको शिक्षण भी देना है लेकिन वह पदार्थ है, वह पार्थिव है। यह जो आकाशगत ऊर्जा है यह अपार्थिव है, यह चिन्मय है।

'नुमस्ताम् आद्याम् विद्याम् चैतन्यरूपाम्।' कहते हैं, वह जो आद्या— causeless cause है, अनादि है, विद्यारूपिणी, ज्ञानरूपिणी, चेतनारूपिणी है ऐसी मां को मैं प्रणाम करता हूँ।

आकाशगत जो ऊर्जा है–'ऊर्जा' शब्द स्त्रीलिंगी होने के कारण 'आद्यारूपिणी, विद्यारूपिणी मा' यह शब्द इस देश की संस्कृति में आया।

'Oh! my father in the Heaven.' यह जैसे पश्चिम के लोग, क्रिश्चियन लोग कहते हैं यहाँ पूर्व में मातृ उपासना आई। मातृभाव जाग्रत करते है क्योंकि ऊर्जा शब्द स्त्रीलिंग में चलता है। इसलिए वह आकाश में जो माँ है 'मेरी' जिस को चिरकुमारी कहते हैं, उस को तूर्यावस्था कहा, उन्मनी अवस्था कहा; मन से उपर की यह अवस्था मौन में स्थिर होने से प्राप्त होती है। 'तुरियें चें तारूण्य. उन्मनी चें लावण्य।' वह जो उन्मनी अवस्था है, आकाश में संस्कारमुक्त होने से उसको 'vergin' कहा, उन्मनी कहा, तूर्या कहा। 'अनादि जे अगण्य चरम तत्त्व' एक ऐसा चरमतत्त्व वहाँ है। चरम क्यों कहा?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उस से आगे कुछ नहीं है तो यह आकाश में जो ऊर्जाएँ है, उन ऊर्जाओं का संचार अब होने लगा। अब तक देह के तदात्मभाव में बंधे हुए थे, मेरे गुण, मेरे दोष, मेरा ज्ञान, मेरे संस्कार, मेरी प्रतिक्रिया, उस में बंधे हुए थे। अब जिस खूंटे से बंधे हुए थे, वह बंधन छूट गया। बंधन भावात्मक है। बंधन कोई माइक्रोफोन जैसी वस्तु नहीं है। बंधन भावात्मक है, इसलिए मुक्ति भी भावात्मक है।

"शास्त्रीओए कीधी युक्ति,
कल्प्यो बन्ध ने मानी मुक्ति".

बन्धन भी कल्पनात्मक है, भावात्मक बन्धन है, वस्तुतः न बन्धन है, न मुक्ति है, लेकिन यह वर्णन करने की पद्धति है। अब तदात्मतासे मुक्त हुए। अब तदात्मता नहीं है इसलिए मुक्त होने का भाव ही नहीं आता। मैं यह कहना चाहती थी कि आकाश में जो संस्कार मुक्त ऊर्जा है, उस से उस के शरीर में एक नई ताजगी आ जाती है।

आकाश भीतर भी है, बाहर भी है। ऊर्जा बाहर भी है, भीतर भी है। वह ऊर्जा आनुवंशिक नहीं है; hereditary नहीं हैं। heredity शरीरतक है, मन और बुद्धि तक है। आनुवंशिक गुण–दोषों का सम्बन्ध कहाँ तक है? शरीर मन और बुद्धि तक। जहाँ मन मौन हो गया वहाँ आनुवंशिक गुण–दोषों से हट गए है। अब डेरा वहाँ से उठ गया तो आकाश में जो प्रज्ञा है वह बाहर और भीतर एक ही है:

"बाहर कहूँ तो सदगुरु लाजे, भीतर कहूँ तो झूठा लो,
बाहर–भीतर सकल निरंतर, गुरू परतापे दीठा लो,
ऐसा लो तत ऐसा लो, किस विध कहूँ गभीरा लो ?

कबीर साहब कहते हैं मैं कैसे कहूँ? किस विध कहूँ? वह चरमतत्त्वकी बात? केवल बाहर है कहूँ तो सद्गुरु भीतर बैठे है। केवल भीतर है कहूँ तो बाहर भी तो विराजमान है इसलिए––'बाहर भीतर सकल निरन्तर, गुरु परतापे दीठा लो।'

मैंने देख लिया कि बाहर-भीतर एक ही है। ऐसी जो वैश्विक चेतना है। हमारे हाड, मांस के शून्य में छिपी हुई जो शक्ति है, उस शक्ति का संचार मन के मौन में होने लगता है। यह मौन के साथ–साथ एक नई ताजगी आ जाती है। शरीर में, मन में, बुद्धि में सब में वह ताजगी filter होने लगती है। वह अन्दर उतरने लगती है, percolate होने लगती है। इसलिए मौन के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभ्यास में जड़ता, तन्द्रा, मूर्छा और निष्क्रियता बढ़े तो मौन के अभ्यास में कुछ गलती हो रही है यह समझ लेना। क्योंकि मौन में तो मर्यादित शक्ति का किनारा छोड करके अमर्याद में चला गया है। जो सच्चे मुनि है, 'आत्मज्ञान स्थां मुनिपणु'' स्व-परिचय से यह राग द्वेष के विचार, विकार को छोडकर सचमुच जो अन्दर के शून्य में पैठ गए वह मौनी हैं। वह गुफा है। 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्' आप की दो आँखों के बीच जिस को ललाट या कपाल कहते हो वहाँ cavity है। यह आज के डॉक्टर्स भी बतला देंगे। वहाँ एक बड़ी सी cavity याने शून्य है। जो अन्दर चला जाता है, मस्तिष्क तक और मेरूदण्ड जहाँ खतम होता हैं, बडा brain बडा मस्तक है वह शुरू होने से पहले और मेरूदण्ड खतम होता है, उस सन्धि में त्रिकोणात्मक शून्य है, पोली जगह है, cavity है। हाथ लगाओ तो भी पता चलेगा। डॉक्टर्स भी बतलाएँगे इस शून्य को। शरीर में अनेक जगह ऐसे शून्य पडे हैं, लेकिन पूरे शरीर में भी व्याप्त है, वहाँ की ऊर्जाएँ शरीर में प्रवाहित होती है। इसलिए मौन में नया शक्ति-संचार है, नई ताजगी है और अथक बौद्धिक परिश्रम करने की शक्ति है। उस की बुद्धि थकती नहीं है। व्यवहार में उतरने पर भी वह व्यक्ति तरोताजा है; क्योंकि शरीर से मिलनेवाली शक्ति, इन्द्रियों में से मिलनेवाली शक्ति, पदार्थों मेंसे मिलनेवाली शक्ति एक तरफ और शून्य मेंसे मिलनेवाली शक्ति संयम से मिलनेवाली अपार्थिव शक्ति दूसरी तरफ-दो शक्तियों का संगमस्थान वहां हो जाता है। दोनों का संगम उस व्यक्ति के जीवन में है तो मौन में रहनेवाली व्यक्तिओं में एक अद्भुत लक्षण पैदा होता है। magnetism around the person. उस व्यक्ति को देखने मात्र से आकर्षण पैदा होता है। उस व्यक्ति के व्यवहार में असामान्यता आ जाती है।

वह व्यक्ति कम थकती है। जैसे योगाभ्यास करनेवालों को एक नई शक्ति मिलती है, थोडे-से आहार में, सूक्ष्म आहार में उनके शरीर थकते नहीं है वैसे मौन में रहनेवाली इस व्यक्ति को बुद्धि थकती नहीं है ? आप दो घण्टे-चार घण्टे में थक जाएँगे वह व्यक्ति चौदह, सोलह, अठारह घण्टे काम करें तो भी थकती नहीं है। नित्य तरोताजा क्योंकि उस की बुद्धि में, मन में राग-द्वेष के खरोंच नहीं हैं, scratches नहीं है, उन की चेतना में कोई खरोंच नहीं है। उन के कर्म राग-द्वेष से मुक्त होने के कारण, मौन में बैठने के कारण चेतना में जरा भी आँच नहीं हैं। undamaged unmutilated consciousness हैं। हमारे शरीर पर घाव पडते है वैसे मन पर घाव पड़ते है, हमारी चेतना पर घाव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ते हैं इसलिए चेतना सिकुड़ जाती है। मौन में बैठनेवाले की चेतना सिकुड़ती नहीं है। चेतना सिकुड़ती नहीं है इसलिए प्रसन्नता है। आप देखते हैं न ?

"प्रसादे सर्वदुःखानाम्, हानिरस्योपजायते।"

यह जो प्रसन्नचेतस् दशा हैं–भगवद् गीता में जिसका वर्णन आया है वह जीवन जीने का आयाम है, dimention है। मेरे मित्रो ! उस में अपने को जीना है। यह जीवन-शास्त्रकी बात चल रही है तो मौन में प्रतिष्ठित होने से उस व्यक्ति में एक असामान्यता आ जाती है। यह असामान्यता, अद्वितीयता और उस के दर्शन, चिन्तन वैश्विक होने के कारण उस व्यक्ति के हाथ से असाधारण काम होते हैं। आप कहते हैं, extra ordinary है, असाधारण है, अद्वितीय है ऐसे काम होने लगते हैं। यदि उन कामों के साथ उसकी आसक्ति हो जाय या यह हो जाय कि यह मेरा मिशन है, मानव-जाति के लिए यह करना है–ऐसा लगने लगे तो ? क्योंकि वह तो मौन में गया इसलिए उस के द्वारा वह होने लगा तो होने देगा–अटकेगा नहीं; लेकिन 'मैं कर रहा हूँ ?' यह भाव आ जाय तो ?

प्रारब्ध है। कभी-कभी किसी को मौन के आयाम में जाकर भी अहंभाव में वापस लौटना पड़ता है। जैसे वह ग्यारहवें गुणस्थानक तक भय है। यदि वह ग्यारहवें गुणस्थानक में पहुँच गए है तो उस के बाद नीचे आने का, वापस लौटने का भय उतना नहीं है, लेकिन तब तक है। यह जैन आगमो में कहा जाता है वैसे मौनतक गए, अद्वितीयता, असाधारणता आई तो बड़े-बड़े काम होने लगे। आकर्षण तुम्हारे शरीर का नहीं है, रूप का नहीं है, तुम्हारे द्वारा जो व्यक्त हो रहा है उस का है। लेकिन मनुष्य को यह लगने लगे कि मेरा मिशन, संप्रदाय खड़ा करें, कार्यकर्ता बन जाय, नेता बन जाय तो उस मुकाम पर वह अटक गया। दस कदम चल के या बीस कदम चलकर के लेकिन रूक गया, क्योंकि वहाँ मम भाव आया। देह पर ममभाव आया तो वह कुटुम्ब में अटक गए। देह से आगे ज्ञाति में ममभाव, मेरी ज्ञाति, मेरी ज्ञाति तो फिर ज्ञाति के लिए असत्य बोलूं, अन्याय करूं, शोषण करूं–यह ज्ञाति के लिए करता है तो रुक गया। करते-करते ममभाव जहाँ पैदा होगा, वहाँ रोक देगा, वह अवरोध है।

यह जो ममभाव है यह अहंकार को केन्द्र में रखता है और ममभाव चहार दीवारी पैदा करते हैं—कुटुम्ब के आसपास, देह के आसपास। कुटुम्ब से उठे तो ज्ञाति में, ज्ञाति से उठे तो धर्म में। मैं हिन्दू, मैं जैन, मैं मुसलमान; कितनी तदात्मता ? तदात्मता है वहाँ regidity आई; जकड़न आई, पकड़े गए, जकड़े गए और 'नाल्पे सुखमस्ति यो वै भूमा तत्सुखम्'। आनन्द कहाँ है ? अनन्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होने में। संकीर्ण होने में दुःख है। व्यापक बनते जाँय तो आनन्द है। तो अब मौन में अद्वितीयता, असाधारणता, आकर्षकता आई इन सब में यदि ममभाव नहीं आया तो यह सब वैश्विक शक्तियाँ प्रकट होने लगती हैं, फिर शांत होती हैं।

इस मौन का जब पचन हो जाता है तो उस के आगे ध्यान की अवस्था आती है। जहाँ व्यक्तिगत चेतना भी शांत है और संस्कारमुक्त चेतना भी शांत है।

मौन से आगे, मौन से उद्‌भवन होनेवाली, उठनेवाली, प्रकट होनेवाली जितनी शक्तियाँ है उस को प्रकट होने दें लेकिन ममभाव न रखें। इस ढंग से व्यक्ति जिएगी तो उस के शरीर में फिर ध्यान नाम की अवस्था प्रकट होती है, जहाँ कोई भी गति नहीं है। व्यक्तिगत चेतनाकी भी गति नहीं हैं वैश्विक चेतनाकी भी नहीं है। वैश्विक चेतना की गति को जो शांत होने देता है ऐसे वीर पुरुष और धीर पुरुष के जीवन में ध्यानावस्था प्रकट होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थ प्रवचन

दिनांक २१-१-८२
प्रातः १० से ११

जो भाई-बहनें कल यहाँ उपस्थित थे वे कल की दस बजे की सभा का जो विषय था, उसको याद करके, उसके अनुसंधान में मेरे साथ आगे चलें। जीवन एक सनातन सत्ता है। जीवन की सत्ता कभी नहीं थी, ऐसा नहीं है, नहीं होगी यह भी नहीं है। एक, अपार, अनंत, सर्वथा, सर्वत्र है, सर्व रूप से वह विराजती है। जीवन की सत्ता और ऊर्जा पृथ्वी के अणु-रेणु में से प्रकट होती है। जल की हर बूंद में से जीवन की जो संजीवन शक्ति है-जीवन निर्माण करना—वह व्यक्त होती है। पवन की लहर में वही ऊर्जा जीवन-दायिनी है। अग्नि की उष्णता में, सूर्य की रश्मियों में, आकाश के अवकाश में वह जीवन है। वह क्यों है? इस का कोई जवाब नहीं है। बस है इसलिए है। जीवन किसी कारण का कार्य नहीं है। स्वयं ही कारण है, स्वयं ही कार्य है।

कल किसीने पूछा था कि भगवान् को कैसे जानें? तो उस समय मैं ने जवाब नहीं दिया था, लेकिन उसका जवाब यह है कि जो कभी समाप्त नहीं होता, ऐसा जीवन आसपास देख रहे हो, और परमात्मा को कहाँ ढूँढने चले भाई! हर साल बारिश आती है लेकिन एक साल की बारिश दूसरे साल पुरानी नहीं होती, वह पुनरावृत्ति नहीं है। हर साल नई बारिश है। हर पौधा नया जीवन ले के आता है। हर फूल का परिमल, उसका सौरभ अपने में नया है। हर बच्चा जो आता है, जीवन का नया उन्मेष बन के आता है, तो जीवन सनातन है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सनातनता यह परमात्मा की पहचान है। सनातनता यानी 'प्रतिक्षणे नवनवताम् उपैति।' प्रतिक्षण नया रूप धारण करने की जिस में शक्ति है। सरिता में जल बहता ही आ रहा है। ऋतुओं के चक्र चले आ रहे हैं और वसुंधरा में से हजारों वर्षों से खेती करने के बाद भी कण में से मण पैदा करने की शक्ति कायम ही चली आई है। यह जो अपने में से जीवन निर्माण करने की शक्ति है, जिसका दर्शन हम सुबह से रात तक अपने आसपास करते रहते है, वही परमात्माकी विभूति है। भगवद्गीता के दसवें अध्याय में 'विभूतियोग' में प्रभुने अपनी विभूतियाँ गिनाई हैं, वहाँ विभूतियों की संख्या पूरी नहीं होती है, वह तो संकेतमात्र है कि अणु-रेणु में मैं हूँ यानी जीवन-विभु, जीवन-प्रभु सदा सर्वत्र है ही है। जीवन की सत्ता 'The isness of life' जिसको पारमार्थिक अर्थ में सत्ता, होनेपना कहते हैं वही प्रभुता है।

प्रभुता की पहचान, परमात्मा की पहचान जो पुराना नहीं पडता कभी और प्रतिपल नया बनकर अपना जो रस है वह नए ढंग से लाता है। 'रसानाम् रसः।' रसों में सर्वश्रेष्ठ रस है प्रभु। विषयों में रस बनते हैं, जिह्वा में रस-ग्रहण करने की शक्ति बनते हैं, फूलों में सुगंध बनते हैं। तो घ्राण में सुगंध लेने की शक्ति बनते हैं। भाई! परमात्मा यह जीवन के रूप से, व्यक्त-अव्यक्त रूप से, सज-धज के जीवन की एकता बैठी है। अनेकता यह एकता का शृंगार है। प्रसाधन है। अनेकता और एकता में विरोध नहीं है।

सत्संग इस देश में हजारों वर्षों से चलती आई हुई एक परंपरा है। जिसमें बच्चों से लेकर बूढों तक को जीवन की जो एकता और सनातनता है जो नित्य, नूतन बनने की क्षमता है उसका परिचय कराने की युक्ति है। सत्संग शिबिर है यहाँ, तो सत्संग की एक कला है। यह शब्द दुनिया की किसी भाषामें नहीं है। संस्कृत भाषा की और भारतीय संस्कृति की अपनी देन है। लेकिन जो देन मिली है, उसको बिगाडने में हम लोग बडे होशियार हैं। इसलिए आज वह सत्संग, वह परंपरा भी विकृत हो गई है।

सत्संग यानी सत्य का संग, सत्य को जानना, पहचानना, परखना, निरखना, जहाँ यह हो सकता है ऐसा संग। अब यह सत्य को निरखेंगे, परखेंगे, अपनी अपनी कक्षा में खड़े होकर। बच्चों के साथ कोई द्वैत-अद्वैत की बात होगी? उनके साथ कोई ब्रह्म-माया की बात होगी? उनके साथ यह बातें नहीं होंगी। उनको तो पशुओं के रूप में, प्राणियों के रूप में या निसर्ग के रूप में परमात्मा कैसे खड़े हैं यह समझाना होगा गीतों के द्वारा कहानियों के द्वारा, नृत्य के द्वारा,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संगीत के द्वारा, भजनों के द्वारा, जीवन की एकता का, नित्य नूतनता का गान जो निसर्ग हमारे आसपास गाता है वह बच्चों को सिखायें तो बच्चों के लिए वह सत्संग हो गया। संगीत में से, नृत्य में से, खेलने में से, कहानियों में से, कविताओं में से ये चीजें सिखानी पड़ेंगी, ताकि उनके दिमाग पर भार न पडे, बोझ न बने। जो ज्ञान बोझ बनता है वह फिर उपाधि बनता है। जिस ज्ञान का ग्रहण करते-करते पचन हो जाता है, उसका भार नहीं पड़ता, फिर वह उपाधि नहीं बनता। सत्संग में चित्त निर्भार हो। सत्संग ही उपाधि हो जाय तो? सत्संग ही बोझ बनने लगे तो? रंजन में से भी सत्संग कराना है। मनोरंजन, बुद्धिरंजन, सत्त्वगुण को बढानेवाला, सत्त्वगुण से ज्ञान देनेवाला हो। ऐसा सत्संग का रास्ता बच्चों के लिए अलग होगा।

बहनों के लिए सत्संगः—बहनों में हृदय की संपन्नता सामान्यतया होती है। सब में होती है, ऐसा नहीं है और अपवाद न हों ऐसा भी नहीं है। जितना नारी जगत् अपने नारीत्व से दूर भागता जा रहा है, पुरुषों की बराबरी करने के, स्पर्धा करने के पागलपन में अपना गौरव और अपनी गरिमा भूलता जा रहा है, उतनी उसके हृदय में कठोरता आ रही है और कोमलता कम हो रही है। पुरुष का—स्त्री का, नारी का—नर का जो सहयोग है, उस का अर्थ, स्वाधीनता और समानता का अर्थ अपना वैशिष्ट्य खो देना नहीं। तो स्त्रियों के पास सामान्यतया भावना की शक्ति, हृदय की शक्ति अधिक है। क्यों अधिक है? और कब तक रहेगी? जब तक उसको माँ बनने की शरम नहीं है तब तक।

जहाँ मातृत्व का गौरव नहीं वहाँ माँ बनना संकट बन जाता है। जहाँ स्त्री बनना ही संकट लगने लगता है वहाँ नारी के दिल में कोमलता नहीं क्योंकि माँ बनने के लिए सहनशीलता चाहिए। नौ महिने तक पेट में धारण करना, गर्भ में दूसरे जीवको अनुकूल पड़े वह आहार लेना, दूसरे जीव को अनुकूल पड़े वही करना, संयम का कितना शिक्षण और संस्कार उन नौ महीनो में होता होगा? यदि मातृत्व, पितृत्व जबरदस्ती से लादा हुआ नहीं है, स्वेच्छा से वरण किया है तो उस बच्चे के प्रति शरणागति हो जाती है। जिस का वरण किया वहाँ शरणागति सम्भव है और लादी जाय तो शरणागति एक पाखण्ड बनता है। तो नारी जगत में जब तक माँ बनने की शरम नहीं, तब तक कोमलता और भाव-संपन्नता रहेगी।

यह इसलिए कह रही हूँ कि पश्चिम में आज नारीत्व का इन्कार है, स्वीकार नहीं। पता नहीं कैसे, वह चीज कहाँ से शुरू हुई है? यह सब आप के पास

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आज बतलाने का समय नहीं, प्रसंग नहीं है। भारत में, कुछ मध्य–पूर्व के देशों में, कुछ अपने दक्षिण–पूर्व के देशों में और मैं मानती हूँ कि चीन में भी कुछ हद तक स्त्री को गौरव है कि वह माँ बन सकती है। और जिसे माँ बनना होता है, जननी ही नहीं, माँ बनना होता है उस में सहन–शक्ति वृत्ति याने धारणा शक्ति, त्याग करने की शक्ति, सेवा करने की शक्ति अपने आप चली आती है। तो ऐसी जो कोमलहृदया महिलाएँ हैं, उनके लिए सत्संग का रास्ता होगा, भजन का, पूजन का, जप का।

बहनें जहाँ बैठेंगी उनको आप संतों के चरित्र सुनायेंगे, संत स्त्री–पुरुष जो हो गए उन दोनों के। क्योंकि संतत्व आने पर न स्त्रीत्व रहता है, न पुरुषत्व। दोनों को लांघ गया जो वह संत बनता है। अपने देह में जो नारीत्व, नरत्व है और उनके सहचारी जो भाव हैं दोनों को लांघकर चले गए।

'देह छतां जेनी दशा वर्ते देहातीत'

सन्तत्व की ऐसी अवस्था है तो उनके चरित्र सुनाना। यहाँ तो रामायण है, महाभारत है, भागवत है और गाँव–गाँव में कोई साधक, सन्त, भक्त निकल ही आते हैं।

भारत टिका हुआ है तो कोई शासकों के, सरकारों के और कोई राजनीति के भरोसे नहीं। जिनके नाम इतिहास में कभी नहीं आए हैं और कभी आनेवाले नहीं हैं, ऐसे सत्त्वशील भक्तों के, सन्तों के और सेवकों के भरोसे भारत टिका है। तो महिला वर्ग को यदि सत्संग कराना है तो यह चीजें उनके सामने रखी जायँ। भावनाओं का ऊर्ध्वीकरण हो, Sublimation हो वह सत्संग बहनों के लिए है।

जवानों के लिए सत्संग :—जवानों के लिए यदि सत्संग कराना है तो आज की दीनता, हीनता जो मन में आई है उसे हटानेवाला होगा। आज भारत के नागरिक का सब से बड़ा सवाल है कि उसको लगता है "मैं लाचार हूँ", कुछ नहीं कर सकता। संविधानने अधिकार दे दिए, आजादी दे दी है, लेकिन जिसको अधिकार दिए वह नागरिक लापता है। वह खो गया है। उसको अपने ऊपर भरोसा नहीं है। उसका भरोसा राज्य पर है, सरकार पर है, कानून पर है, गोली पर है, डण्डे पर है, पैसे पर है अपने पर नहीं है। आत्मविश्वास हीन नागरिक के हाथ में संविधान के दिए अधिकार भी आपत्ति बन सकते हैं, और खतरनाक बन सकते है देश के लिए। तो आज नौजवानों को क्या सिखाना पड़ेगा सत्संग में ? यह जो आत्मोपासना, वीरता और धीरता का काम है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह सिखाना पड़ेगा । 'बलम् उपास्स्व' आत्मा नाम की सत्ता का जो बल है— force, आत्मा ऐसी कोई चीज नहीं है कि जिसको उपलब्धि के बाद मनुष्य की शक्ति न बढ़े । आज आत्म-बल की आवश्यकता है ।

जितना विश्वास धन पर है, शस्त्र पर है शोषण पर है, अन्याय पर है उस से आधा विश्वास भी यदि आत्मा या परमात्मा पर हो जाय तो आज का समाज बदल जाय । तो युवकों को सत्संग कराना है तो उनका आत्मबल जागृत हो ऐसा सत्संग करावें । हां, आज सत्संग का यह अर्थ हम सब भूल गए हैं । देरासरों में, मन्दिरो में चले जाते हैं । रामायण की, भागवत् की कथा गाँव-गाँवमें होती है, लाखों रुपये खर्च होते हैं । सात-सात, आठ-आठ दिन में लाखों रुपए खर्च होते हैं, वह कोई अनिष्ट बातें है यह मैं नहीं कहती हूँ, लेकिन इतना होते हुए और लाखों लोग सत्संग करते हैं, फ़िर भी इस देश में भ्रष्टाचार, रिश्वत चलता है, आतंक चलता है । अच्छा देश है भाई ! रोज यदि लाखों लोग रामायण, भागवत का श्रवण करते हैं, लाखों लोग यदि मन्दिरो में जाते हैं, देरासरों में जाते हैं तो यह भ्रष्टाचारी लोग आते कहाँ से हैं ? एक सत्याग्रही व्यक्ति सारे संसार के लिए भारी हो जाय तो अडसठ करोड में से अडसठ लाख व्यक्ति यदि मन्दिर, देरासर, गिरजाघर या मस्जिद में जाते हों और कोई न कोई कथा, व्याख्यान सुनते हों तो फिर भ्रष्टाचार रुकता क्यों नहीं है ? यह सवाल कभी आप अपने को पूछेंगे ? आज भारत वर्ष में पहले मनुष्य बनने की जरूरत है । माँ-माँ बन सके, युवक-युवक बन सके ।

"युवा स्यात् साधुः स्वाध्यायी आशिष्ठः बलिष्ठः द्रढिष्ठः ।"

आज शरीर से युवक हैं, मन से युवक नहीं हैं । जीवन के प्रारंभ में जिसने हार मान ली जिंदगी से, क्या वह जवान है ? मुश्किलियों को देखकर जो हताश या निराश हो गए वह कोई जवानी है ? तो युवकों को यदि सत्संग करना, कराना है तो यौवन का गौरव बढ़े, मनुष्य होने का गौरव बढ़े, अन्याय के, शोषण के सामने लड़ने की हिंमत आए और अपने भीतर यदि शोषण, अन्याय, अत्याचार करने की इच्छा है तो अपने साथ लड़ने की भी हिंमत हो, साहस हो—ऐसे आत्मबल को जगानेवाला अभ्यास युवकों को करना पडेगा ।

युवकों के लिए उपनिषदों का अभ्यास उपयोगी है, और उपनिषदों का सार जिसमें है, ऐसे श्रीमद्भगवद्गीता का स्वाध्याय करें, अर्थ समझें । नहीं आती है संस्कृत तो गुजराती में संपूर्ण गीता का अनुवाद, समश्लोकी हुआ अपने पास उपलब्ध है । नौजवान उपनिषद सीखें । आत्मविश्वास की जिसके चेहरे पर खुमारी है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आँखो में तेज है ऐसे गाँव में यदि २५, ५० नौजवान हैं तो कोई गुंडागर्दी नहीं कर सकता है। इतनी धाक हो गुंडा-गर्दी करनेवालों पर कि इस गाँव में २५-३० नवजवान हैं। किसी लड़की के सामने आँख उठाईं तो खुद मरने के लिए सामने आ जाएँगे। यहाँ मेरा नहीं चलेगा। कोई शरीफ की दुकान लूटने जा रहे हैं तो उनको साहस नहीं होगा। दुकानदार गलत भाव लगा रहा है, गलत ढ़ंग से माल दे रहा है, उसकी हिंमत नहीं होगी। वह जानेगा कि गाँव में ५-२५ नौजवान बैठे हैं। मैं मिलावट वाला दूषित माल बेचूं, या गलत ढंग से बेचूं तो पांच पचीस की टोली मेरी दुकान पर आ जायगी और कहेगी यह क्या कर रहे हो ! आज किसीको कोई जवाब पूछनेवाला नहीं है और नौजवान होते हुए देश अनाथ है।

तो जहाँ मनुष्यता नहीं है वहाँ अध्यात्म की बातें कैसे ! लाखों-करोडों रुपए खर्चकर के सत्संग करना ! मनुष्यता का ह्रास न हो इस देश में इस की किसी को पड़ी नहीं ! मनुष्य मनुष्य बने तब मनुष्यों के लिए देश है, धर्म है, मनुष्यों के लिए अध्यात्म है। जो अपने ही तन-मन के गुलाम हैं, जो पशुता और प्राकृतता में लिपटे हुए है, जिन के मन में जीवन मूल्यों का कोई मोल नहीं है, उन के लिए अध्यात्म क्या ! और क्या ध्यान ! यह ध्यान उन का पलायन है। समस्याओं से भागना है, जिम्मेवारियों से भाग जाना है, इसलिए वह ध्यान की, हठयोग की, तन्त्र की, मंत्र की, शक्तिपात की और पता नहीं क्या क्या बातें करते हैं !

मित्रो ! सनातन धर्म एक है—सत्य को पहचानना, लेकिन युगधर्म बदलता है। आज के समाज में युगधर्म की याद दिलाने के लिए सत्संग हो। जो सत्संग जीवन के संदर्भ से अलग ले जायगा, जीवन के संदर्भ को भुला देगा, जिम्मेवारियों का भान भुला देगा वह सत्संग नहीं है, वह कुसंग हो गया। इसलिए आप के पास मुझे बात रखनी है मानवनिष्ठ जीवन-अभिमुख अध्यात्म की। क्योंकि इस देश में मनुष्यता का और मनुष्यों का अकाल पड़ा है। भले न जनसंख्या अडसठ करोड हो और इस शताब्दी के अंत तक नब्बे करोड़ होनेवाली हो। लाभ क्या है उस से ! संख्या से मनुष्य गिनना काम का नहीं है। खैर ! तो युवकों को तेजस्वी बनानेवाला, शरीर को, मन को, बुद्धि को, तेजस्वी बनानेवाला साहित्य जो भारतीय संस्कृति में है, उस का अध्ययन कराना पड़ेगा। भारत वर्ष एक देश है, एक राष्ट्र है, से राष्ट्रीय एकता को कायम रखने की प्रेरणा सत्संग में मिले। जितने धर्म और धर्मभक्त लोग इस देश में हैं, ये सब नागरिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं और यहाँ रहनेवाले है । इस प्रकार सर्वधर्म–समभाव की प्रेरणा दे—ऐसा सत्संग कराना पड़ेगा ।

सत्संग के बहाने यदि साम्प्रदायिकता बढाने की बात होती हो तो वह राष्ट्रीय द्रोह हो जायगा । ज्ञातिवाद को भड़काने की बात जैसे राजनीतिवाले करते है, वैसे यदि हमारे सत्संगों में होने लगे, धर्म के नाम से, अध्यात्म के नाम से, ज्ञातिवाद और सम्प्रदायवाद बढने लगे तो इस देश को ऐसे सत्संगों से परमात्मा बचाये । यह आप की और मेरी जिम्मेवारी हैं । इसलिए मैंने सुबह तो ध्यान की बात की, अब मानव धर्म की बात करना चाहती हूँ ।

मनुष्य बनने का संकल्प करें तो नवयुवकों में अन्याय का प्रतीकार करने की क्षमता जागे । अपने द्वारा अन्याय न हो, शोषण न हो इस प्रकार आत्मबल की जागृति करनेवाला, तेजस्वी, निर्भय बनानेवाला सत्संग यदि गाँव–गाँव में होने लगे तो ? युवकों का तिरस्कार करेंगे ? आज विद्यालयों में, महाविद्यालयों में जानेवाले हमारे बच्चे जो हैं उन की हम उपेक्षा कर रहे हैं ।

जैसे–जैसे संपन्नता बढ़ती है वैसे बच्चों के तरफ ध्यान नहीं । नौकरों के पास बच्चे हैं । दो ढाई साल का हो गया, किन्डरगार्टन में पहुँचा दिया । वह मोन्टेसरी क्या कहते हैं ? प्रि-प्राइमरी स्कूल में छोड देते है । माँ–बाप कहते है, अब छोड दिया वहाँ शिक्षण हो रहा है । वहाँ लोग वेतन के लिए बैठते है, उन की वृत्ति यदि जीविका में है, शिक्षण की नहीं हैं, संस्कार सिंचन की नहीं है तो भले चार घण्टे बच्चे वहाँ रहे और दो-चार खिलौने के साथ खेलना सीखकर आए । लेकिन ढाई तीन साल से छः साल की उमर तक बच्चे को जो शुभ संस्कार मिलने चाहिएँ वातावरण में से, वह मिलने का स्थान जो परिवार था वह अब नहीं रहा । पिता को फुरसत नहीं है, माँ को फुरसत नहीं । बच्चों को सम्भालना उपसर्ग लगता है, संकट लगता हैं, इसलिए भेज दिया स्कूलमें ।

यही हाल प्राइमरी स्कूल का है, हाईस्कूल का है और कोलेज का है । यहाँ शिक्षकों को अब निश्चिन्तता है क्योंकि सरकार की ओर से वेतन मिलता है । इसलिए शिक्षक बनना यानी विद्यार्थी के साथ नया संबन्ध बनाना नहीं होता । वह आकांक्षा उठती नहीं है कि मैं आचार्य बनूं ।

"स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम् ।"

स्वाध्याय भी करूं आर प्रवचन भी करूं । विद्यार्थी शिक्षक संबन्ध वहाँ नहीं बनता । परिवारों में से संस्कार–'सज्जन की तरफ से ध्यान हट गया है । साहित्य में नहीं, विद्यालयों में नहीं, परिवारों में नहीं और फिर हम कहते हैं कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हमारे बच्चे बिगड़ गए हैं। generation gap आया है। आज कल बच्चे बड़े शैतान हैं, किसी की बात मानते नहीं है। लेकिन भाई पहले problem parents पैदा होते है बाद में probiem children इसलिए जिम्मेवारी माता–पिता की है।

माता–पिता यदि परिवार में संस्कार न दें, सत्संग घर में न करें, माता–पिता और बच्चे दिन में एक बार भी साथ में न बैठें, प्रार्थना के लिए, मौन के लिए ध्यान के लिए, हरिनाम के लिए। तो कहाँ से मिलेंगे संस्कार? अरे बच्चा क्या पढ़ता है? वह क्या नहीं पढता? अपने बच्चे कहां जाते है? किसके साथ खेलते हैं? यह भी माता–पिता को मालूम नहीं रहता। आपका गुजरात इस देश में संपन्न राज्य है। गुजरात और पंजाब यहाँ बहुत पैसा आ रहा है, जल्दी–जल्दी, परिश्रम के बिना। परिश्रम से आती है वह संपत्ति है, लक्ष्मी हैं और परिश्रम के बिना जो धन घर में आता है वह पाप की प्रवृत्ति को जगह देता है। यह बहुत ठीक ढंग से, बारीकी से मैं ने देखा है।

गुजरात में माता–पिता और बच्चों का सम्बन्ध बड़ा क्षीण हो रहा है इसलिए लड़के स्कूल के, कॉलेज के आपको बिगड़े हुए लगते हैं। उस की जिम्मेवारी आपकी और मेरी है, बच्चों की नहीं। उन में यदि उत्पात की, तोड़फोड़ की प्रवृत्ति है तो उसके जिम्मेवार हम हैं। यह यदि माता–पिता, शिक्षक, नेता, साहित्यिक, सत्संगी के ध्यान में आएगा तो आज बात बन सकेगी। यह हमारा ही रक्त है, हमारे ही बाल–बच्चे हैं उन पर हम अविश्वास न करें। उन का तिरस्कार न करें और जो गौण बातें हैं कि यह कपड़ा पहनता है, इस ढंग से क्यों बात करता है ऐसी गौण बातें छोड़ दीजिए। fundamental को पकड़ लीजिए, विश्वास रखिए उस पर। जितना विश्वास आप रखेंगे उस से शतगुणित होकर आप के पास लौटेगा। तो बच्चों के लिए और युवकों के लिए ऐसे सत्संगमंडल बनें, स्वाध्याय मण्डल, व्यायाम मंडल बनें कि जिस में उस की आत्मा का तेज प्रकट हो। गाँव–गांव में, शहर–शहर में युवकों के ऐसे केन्द्र हों जहाँ स्वाध्याय, सत्संग और व्यायाम तीनों एक साथ चलें और सत्संग कैसा? साम्प्रदायिकता को भड़कानेवाला नहीं, जातिवाद को उकसानेवाला नहीं, राष्ट्रीय एकता कायम रहे, इस भावना को बढ़ानेवाला।

इस देश में संत–संस्कृति, भागवत संस्कृति कायम रहेगी। पदार्थ–प्रधान नहीं, पदार्थ परायण नहीं, जीवन–परायण संस्कृति कायम रहेगी। भोग प्रधान नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसिकता–प्रधान संस्कृति आएगी, यह बातें सिखानेवाला वातावरण होगा। ऐसे सत्संग–केन्द्र जितने बढ़ेंगे, शिबिरों के द्वारा, वर्गों के द्वारा, उतना भला है। जो वेकेशन है उन में वर्ग चला के, सत्संग, स्वाध्याय, व्यायाम चला कर यह वातावरण अपन पैदा करें, तो मैं मानती हूँ कि पांच–दस वर्ष में भारत का आज का वातावरण बदलना कोई असंभव बात नहीं है।

बड़ों के लिए सत्संग—बड़ों के लिए अब क्या कहना है ? वह किस प्रकार का सत्संग करें ? दो तीन चीजें है। जो प्रौढ हैं, बड़े हैं उन के लिए मुझे बात करनी है कि जब तक सत्य क्या है यह समझ में नहीं आता, एवं 'परमात्मा है' इस के विषय में बुद्धि में निश्चय नहीं होता है, निर्भ्रान्त बुद्धि नहीं होती है तब तक चित्त में निश्चिन्तता आती नहीं। जब बुद्धि निर्भ्रान्त होती है तब चित्त निश्चिन्त निर्भय बनता है। तो प्रौढों को सत्संग और स्वाध्याय में एक बात समझने की है। कि हजारों वर्षों से इस देश में जो अध्यात्म नाम का विज्ञान चलता आया यह कल्पना का शृंगार नहीं है, यह वाणी का, वाचा का विलास नहीं है, यहाँ कोई कल्पना, अनुमान, तर्क की बात नहीं है, यह अनुभवगम्य विज्ञान है। हजारों वर्षों से, हजारों लोगों ने, हजारों प्रकार से प्रयोग किए हैं।

कैसा सुंदर ऐश्वर्यशाली हैं यह देश कि परमात्मा को पहचानने के लिए कोई तो गए हठयोग के मार्ग से। शुद्धि करते गए। शरीर से प्रारंभ किया उन्होंने शरीर की शुद्धि करने लगे। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, ज्ञानमय कोश, विज्ञानमय कोश इन सभी कोशों का शुद्धिकरण किया। स्नायुओं का, मज्जाओं का, ज्ञानतन्तुओं का, नाडीतन्त्र जो है उस का शुद्धिकरण किया और जहाँ शुद्धि हुई वहाँ शक्ति आई। जहाँ शुद्धि हुई वहाँ शांति आई। और जहाँ शुद्धि हुई वहाँ भीतर का आत्मा का तेज भी प्रकट हुआ। तो कोई चले हठयोग के रास्ते से। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि यह मार्ग है एक।

मन्त्रशास्त्र—दूसरे ने कहा नहीं हम शरीर को नहीं पकड़ेंगे। हम पकड़ेंगे शब्द को और शब्द में जो नाद है उस को। उन्होंने मंत्रशास्त्र का उपयोग किया। यह metaphysical sound है, शब्द में नाद है और नाद में ऊर्जा है। Sound energy & light energy. Sound and light cannot be seperated. प्रकाश और नाद को अलग नहीं कर सकते। वह जहाँ रहेंगे मिले–जुले रहते हैं। प्रकाश का अपना नाद है और नाद का अपना प्रकाश है। तो उन्हों ने शब्द को पकड़ लिया। शब्द को पकड़ने से भजन आया, जप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आया। मन्त्रयोग आया, उस में से पकड़ लिया। उस से वह पकड़ते-पकड़ते, जप करते-करते आहत शब्द से अनाहत तक पहुँच गए। मार्ग है, जिसको जहाँ रस है उसे पकड़ें।

तन्त्रयोग—किसी ने कहा हम शब्द को, मन्त्र को नहीं तन्त्र को पकड़ेंगे। शरीर एक तन्त्र है, यह जो गात्रवीणा है इस गात्रवीणा को बजाने का कोई तन्त्र है। तो गात्रवीणा को हम पकड़ेंगे। दो तुंबे जो है (१) मस्तक और (२) उदर उन दो तुंबों को जोड़नेवाले पांच प्राण है और श्वासोच्छवास की क्रिया है। इन्होंने शरीर को इस ढंग से पकड़ा कि शरीर के महत्त्व के स्थान जहाँ होंगे, जिन को हमारे यहाँ चक्र कहा गया, उन्हें पार करते गये। आज की Anatomy से शरीर को काटेंगे, पकड़ेंगे तो आप को चक्र नहीं मिलेंगे। पश्चिम के Science में वह कहते है कि शरीर की जो हमारी Anatomy हैं इस में चीरफाड़ करने से तो हमें चक्र नहीं दीखते हैं। तो मैं ने कहा—ठीक हैं—गाय के शरीर की चीरफाड़ करने से दूध नहीं मिलता लेकिन गाय के शरीर में दूध है। दोहन करनेवाला यह जानता है और निकालता भी है। उसी प्रकार चक्रों की सत्ता है यह गाय के शरीर में दूध है वैसे है, तिल में तेल हो वैसो है, जल में विद्युत-शक्ति है वैसी है। हाथ में जल लेकर कहें कि इस में विद्युत-शक्ति नहीं है तो फिर मैं कहूँगी कि भाई! तेरा विज्ञान बहुत स्थूल है। तेरा वैज्ञानिक verification जो प्रमाण है यह भी बहुत स्थूल है। जीवन सूक्ष्म है, तू पकड नहीं पाता है। खैर! तन्त्र मार्ग से शरीर में जितनी व्यवस्थाएँ है उन व्यवस्थाओं में नई संगति खड़ी की जाती है।

ऊर्ध्वीकरण : Sublimation of instincts यह भी एक मार्ग है, कोई कहता है यह भी हम को नहीं चाहिए। भक्तियोग नहीं, मन्त्रयोग नहीं, हठयोग नहीं, तन्त्रयोग नहीं।

लययोग : वह लययोग को पकड़ता है कि मैं सभी वृत्तियों का लय करूंगा इन्द्रियों का लय मन में करूंगा, मन का लय मौन में करूंगा। तो वह लययोग का रास्ता पकड़ेगा।

देखिए इस देश में सत्य को पहचानने का एक ही रास्ता पकड़ो ऐसा आग्रह नहीं रखा गया। जिस के पिंड में जैसी रूचि हो वैसा रास्ता। जैसे जिस के संस्कार हों। पित्तप्रधान प्रकृति है तो वृत्ति एक प्रकार की, कफप्रधान है तो दूसरे प्रकार की। आहार के विषय में जैसे अभिरुचियां बदलती है वैसे साधना के विषय में भी कोई लययोग पकड़ेगा। कोई कहें कि नहीं मेरा रजोगुण प्रधान स्वभाव है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुझे कर्म करना है, क्रिया करना है तो कहेंगे चलो कर्मयोग करो। 'योगी भवार्जुन !' किसी भी रास्ते से जाओ लेकिन योगी बनना है।

योगी का अर्थ पहले दिन हमने देखा था कि व्यवहार करते हुए चित्त में समत्व हो और इन्द्रियों में संतुलन रहें। असंतुलन अशुद्धि है। क्षोभ, क्षुब्धता अशुद्धि है। समत्व शुद्धि है। तो व्यवहार करते हुए चित्त की समता कायम रहे। यही तो स्थितप्रज्ञ के श्लोकों में रोज गाते हो रे। तो चित्त में समत्व कायम रहे। 'समत्वम् योग उच्यते।' व्यवहार करते हुए इन्द्रियों में नशा न चढ़े। कर्म करने लगे और हर क्रिया का नशा है, हर क्रिया उत्तेजना है। पांच मिनिट का काम है और पन्द्रह मिनट उस का तनाव लेके बैठे हैं तो वह कर्म करने की कला तो नहीं है। तो रजोगुणवाले को यह तनावमुक्त कर्म करने की बात बतला कर कहा जाता है कि अंत में तू वहाँ जाकर पहुँचेगा।

कर्म बन्धन–कारक न बनें, चित्तशुद्धिकारक बनें मोक्षदायक बनें ऐसी युक्ति तू कर। तो तुम कर्म के द्वारा जहाँ पहुँचना है वहाँ पहुँच जाओगे। भारतीय संस्कृति कहती है कि सत्य को पहचानो। तो कोई कर्मयोग से चला, कोई सत्त्व-प्रधान है तो ज्ञानयोग से चला, कोई ध्यान-योग से चला। चाहें जितने मार्ग है।

तो अब बड़ों के लिए जो सत्संग करना है, वह संस्कारों के अनुरूप करें। न किसी का खंडन–मंडन, न आग्रह। इतना विस्तार मैं आज क्यों कर रही हूँ ! प्रश्न पूछा गया था कि हम चिन्तित हैं उलझन में हैं धर्म कथाओं में जाते हैं वगैरह। इसलिए सोचा बच्चों से प्रौढ़ों तक सत्संग की युक्तियाँ आपके सामने रख दूं। तो प्रौढ कैसे सत्संग करें? जीवन का इन्कार नहीं, सम्बन्धों का स्वीकार। और ये चीजें हमें अध्यात्म की साधना कराती हैं। भ्रष्टाचार हिंसा, अन्याय, अत्याचार वगैरह चलते रहें और साधना की बातें करते रहें कैसे हो सकता है? साधक बनने से यदि हम मनुष्य मिट जाते हैं तो साधना अभिशाप है। इतनी गंभीर स्थिति देश की है। ऐसी कथा मंदिर–मस्जिदों में कही जाती है कि बस तुम नाम भजते रहो, कुछ करना नहीं है तो मैं यह नहीं कहूँगी। दामनगर में आपने ऐसी बहन को बुलाया है जो विद्रोही है। साधक बन गया और मनुष्य मिट गया? सब इन की चिंता करें और वह किसी को न करें। क्यों रे भाई ! गाँव में व्यक्ति–व्यक्ति के बीच, मनुष्योचित व्यवहार होना चाहिए। इस स्वीकार की प्रेरणा मिले यही सत्संग है, इसलिए सत्संग–शिविर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अंत में उठने से पहले एक मुद्दा कहकर प्रभात का प्रवचन विसर्जित होगा। चाहे जिस मार्ग से आप चलें, जीवन के अंतिम सत्य दो प्रकार से हाथ में आते हैं। एक तो पिंड में आत्मा नाम की जो सत्ता है वह हाथ में आती है। आज प्रातः काल की ध्यान सभा में अपन आकाश तक तो पहुँचे ही हैं। अब आकाश के अवगुंठन को हटाकर आत्मा दर्शन दें इतना ही बाकी है। तो पिंड में आत्मा, आत्म-सत्ता है, और बाहर जीवन एक है यह सत्य हाथ में आता है। जीवन की एकता, ब्रह्मांड की या विश्व की एकता का सत्य हाथ में आता है।

चाहे जिस मार्ग से आप चले जाँय, उसको राधा-माधव, शिव-शक्ति, ब्रह्म-माया जो कहना है, जिन नामों से भी आप कहें मगर जीवन एक है साथ-साथ अनेक है यह सत्य हाथ में आएगा। जीवन गति है और साथ में स्थिति भी है यह सत्य ध्यान में आएगा। जीवन में शब्द भी है और मौन भी है। जीवन की एकता अमर है, अजर है, शाश्वत है, सनातन है और जहाँ-जहाँ प्राणी मुखरित है वहाँ आत्मसत्ता है। छोड़ दीजिए अन्य प्राणियों की बात, मनुष्यों की ले लीजिए। तो मनुष्य केवल हाड-मांस का पुतला नहीं, उस में आत्मा है यह दो प्रकार से सत्य हाथ में आया।

यह अंतिम मुद्दा आज के प्रभात में मैं आपके पास रखना चाहती हूँ कि हम आत्मा हैं और उस आत्मा के बल को प्रकट करने के लिए देह साधन मिला है यह बात पकड़ में आ जाये। आप भक्तियोग से जाइए, कर्म, ध्यान, ज्ञान किसी भी योग से तो ये चीजें पकड़ में आयेंगी सत्संग में से कि हम आत्मा हैं, हमारा सहजात्मस्वरूप नित्य शुद्ध-बुद्ध है और देह में आने का प्रयोजन है कि अपने स्वरूप को पहचानें। देह को खिलाने-पिलाने के, अन्न, वस्त्र आच्छादन के लिए धन-दौलत चाहिए वह साधन बन गया, साध्य नहीं। देशभर में चलने वाले सत्संग में से ये दो चीजें यदि लोग पकड़ लेंगे तो आज नैतिक मूल्यों का जो पतन है वह रुक जाएगा। ऐसे रुकेगा कि—यदि मैं नित्य, शुद्ध-बुद्ध, स्वरूप, आत्मा हूँ, और ऐसे अनेक देहों में मैं आया हूँ, गया हूँ, आता हूँ, जाता हूँ, इनको जिलाने के लिए मुझे जो परिश्रम करना है वह यथाबुद्धि, यथाशक्ति करूंगा—लेकिन मुझे ज्यादा धन मिले, ज्यादा परिग्रह हो, ज्यादा प्रकार का परिग्रह हो—इसके लिए झूठ बोल करके, किसी की खुशामद करके आत्म-सम्मान खोकर के, रिश्वत देकर के मैं जिंदगी नहीं बसर करूंगा। देखिए! भ्रष्टाचार को रोकने की जो एक अमोघ युक्ति है वह व्यक्ति के हाथ में है। कानून और बंदूक या गोली से वह काम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं हो सकेगा, वह सत्संग में से हो सकता है। सत्संग करने में यदि हम प्रामाणिक हैं, क्योंकि सत्य का संग करना है।

जहां से प्रवचन शुरू किया था, उसको याद कीजिए। देह आज साध्य हो गया है, देह के जो सुख हैं वह साध्य हो गए हैं, इसलिए साधन–शुद्धि निकल गई। गीत गाएँगे वह अखा के हों, नरसिंह या मीरा के हों, तुलसी के हों, गांधीजी का नाम भी लेंगे, खादी भी पहनेंगे पर जीवन में से साधन–शुद्धि निकल गई। व्यक्तिओं के जीवन में से साधन–शुद्धि गई, इसलिए राष्ट्र-व्यापी भ्रष्टाचार है। अपने जीवन में, अपने को शुद्धि लानी पड़ेगी। लंका में बैठकर विभीषण भक्ति कर सका तो हम भी इतने भ्रष्टाचारी समाज में रहकर के अपना जीवन सदाचारी रख सकेंगे, सत्यमय और अहिंसक रख सकेंगे यदि हमारे जीवन में सुख की सामग्री साध्य नहि, साधन है। 'आत्मा है' इस आत्मसत्ता में यदि हम संतोष ले सकते हैं।

आज बहुत बड़ा नुकसान इस देश को हुआ है पिछले ३०–३५ वर्षों में कि संतोष के अनुभव की शक्ति हमने खो दी है। संतोष जो धन था मनुष्य का बाजरे की मोटी रोटी और नमक, छाछ खाकर के जो संतोष था वह आज दिन में चार बार तरह–तरह के पकवान और भजीया, गांठिया, फाफड़ा वह सब खाकर के संतोष नहीं है। पेड़ के नीचे या झोंपडी में बैठकर के भी जो आदमी प्रामाणिक और सत्यनिष्ठ रहता था, उसको घर में पत्नी, बच्चों के साथ संतोष था, आनन्द था, वह जीवन का धन था, वह आज नहीं रहा।

पदार्थ–परायण संस्कृति ने हमारा वह धन लूट लिया है। संतोष मानने की शक्ति हम खो बैठे हैं। हजार रुपए में संतोष नहीं। भूखे की बात तो मैं करती नहीं हूँ। जिनके पास धन है उनके भिखारीपन की बात कर रही हूँ। हजार है तो उनको लाख चाहिए, लाख है तो दस लाख चाहिए, दस लाख है तो करोड़ चाहिए। इसको पाने की स्पर्धा में–लाख या करोड़ झूठ बोले बिना नहीं बनता। हजार के पचास हजार झूठ के बिना नहीं बनते हैं। उनको संतोष नहीं है, बस more and more & more & more यह जो लालसा है, यह पदार्थ लम्पटता जो है, यह विषय–लम्पटता आ गई है इसलिए रसिकता चली गई। उत्तान उपभोग रसिकता को खा जाते हैं मित्रो! तो संतोष पाने की शक्ति वापस लानी है। वह अपना धन जो लूटा गया है, उपभोग–परायण, पदार्थ–परायण संस्कृति ने जीवन–निष्ठा को हटा दिया है, मूल्य–निष्ठा को और श्रद्धा को खतम कर दिया है। इसलिए हम दीन–हीन लाचार बने हैं। संपत्ति नहीं, लक्ष्मी नहीं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धन चाहिए, पैसा चाहिए, कागज के नोट चाहिएँ जिस में खरीदना, बेचना चले। सुख खरीदेंगे, रूप खरीदेंगे, उपभोग खरीदेंगे, सत्ता खरीदेंगे, मत खरीदेंगे बस खरीदने की बात। खरीदना—बेचना। सारी जिन्दगी एक शेयर बाजार हो गई है और हम सब broker बन गए हैं।

Bargaining at the counter of relationships. सारे सम्बन्ध investment की भाषा में चलते हैं। भाइयों के साथ, माता-पिता के साथ वही चलता है। आज अध्यात्म का नाम आप न लें तो मैं आप से कुछ नहीं कहूँ, लेकिन दिन में दस बार हम कहते हैं कि हमारा देश धार्मिक है, आध्यात्मिक है और इतनी निर्लज्जता से उपभोग—लम्पटता में हम फँसते चले जा रहे हैं। इसलिए यह संतोष नाम का जो धन है उसको वापस कमाने का स्थान केवल एक सत्संग है आत्मा के विषय में सभानता कराना और परिवार में साधन—शुद्धि लाना। परिवार में साधन—शुद्धि आ जायेगी तो काम बड़ा सरल बनेगा। शोषण को रोकने का काम सरल बनेगा। यह संतोष नाम का जो धन है उसकी बात कविता की भाषा में नहीं कह रही हूँ।

मैंने कई जगह घटना कही भी होंगी, यहाँ भी कह दूँ। मेरे जीवन का प्रारंभ ही भूदान में काम करने से हुआ। १९५३ की बात है। विनोबाजी १२००—१८०० केलरी आहार लेते थे। नेहरूजी को चिंता हुई। चौदह—पन्द्रह मील तक रोज चलते है, पांच—छः सभाओं में रोज भाषण करते हैं, यह विनोबा तो देश की दौलत है, देखिए न इन से कुछ कहिए। तो पंडित जवाहरलालजीने Dr. B. C. Roy की अध्यक्षता में पांच डॉक्टरों का एक पेनल भेजा था। रांची जिले में थे विनोबा। उन दिनों में मेरी पदयात्रा भी रांची जिले में चलती थी। तो एक इत्तफाक था, संयोग था कि मैं विनोबा के पड़ाव पर थी, जिस रोज यह पेनल आया। दादा धर्माधिकारी, मैं, जयप्रकाश जी भी शायद थे। हम लोग पड़ाव पर थे। अब ये डॉक्टर्स आए। विनोबाजी बैठे थे। आप तो जानते है विनोबाजी बड़े विनोदी व्यक्ति रहे हैं। B. C. Roy बड़े गंभीर व्यक्ति और उसके साथ जो डॉक्टर्स आए थे वे कोई मद्रास से, कोई दिल्ली से। उन्होंने पूछा 'क्या—क्या खाते हैं?' विनोबाजीने कहा दिनभर में श्रीमद्भगवद्गीता अठारह अध्याय खाता हूँ। आप हँस पड़े न? क्योंकि हम गीता के अध्याय खाते नहीं। जो अर्थ का सेवन है, भाव का सेवन है। एक—एक शब्द का अर्थ समझ में आया तो आहार हुआ न भाई? जिस को आपने ग्रहण किया, जो धारण हो सकता है, जिस में से शक्ति मिलती है, वह आहार हुआ न? लेकिन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

डॉक्टर्स तो एक-दूसरे का मुँह देखने लगे कि गीता के अध्याय भी खाए जाते हैं ? बिनोबाजी इतना कहकर चुप हो गए तो दादाने कहा आगे बढ़िए । उन्होंने कहा नहीं मैं गीता के जो अठारह अध्याय खाता हूँ इनकी ये केलरीज बनाएँ तब तक मैं रुका हूँ । फिर आगे बोले कि मैं आकाश खाता हूँ । केवल बारिश के दिनों अंदर सोते थे नहीं तो जब तक उनका शरीर स्वस्थ था, लगभग ७५ साल की उम्र तक बाहर सोते थे । दिनभर बाहर बैठे रहना और जैसे धूप घूमेगी वैसे-वैसे आधी छाया, आधी धूप में रहना । कोई पूछे कि विनोबाजी धूप में क्यों बैठे हैं ? तो कहें कि multi vitamins treatment चल रही है । धूप में जो multi vitamins है, संजीवनशक्ति है उसको मैं लेता हूँ और आकाश खाता हूँ । योगशास्त्र में आकाश को आहार कहा है । क्यों ? आकाश में बाकी जो चार भूत है वह सूक्ष्म-रूप से विद्यमान हैं । पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि सब विद्यमान हैं, वर्तमान है आकाश में । विनोबाजीने कहा 'आकाश खाता हूँ, बनाओ केलरी !'

तब तक तो डॉक्टर्स बेचैन हो चुके थे लेकिन अभी तो एटम-बोम्ब बाकी था । विनोबा बोले "मैं संतोष खाता हूँ;बनाओ केलरीझ ! केलरी में गिनते हो और मैं कितना दही खाता हूँ, मधु खाता हूँ, इनको गिन करके १२००-१८०० केलरीज लिखते हो ?"

इन योगियों के देश में ऐसा यौगिक आहार किया जाता है । संतोष आहार है । संतोष से चित्त में शीतलता रहती है । चित्त में तनाव नहीं रहता । फिर यह hyperacidity, hyper sensitivity, high B. P. पता नहीं क्या-क्या ? आज कल आधुनिक मनुष्य की ये फैशनेबल बीमारियाँ है । वह नहीं होती हैं । फिर चौदह मील चलो या (१६) सोलह घण्टे काम करो । विनाबाजी को सोलह घण्टे काम करते मैंने देखा है और शायद जिनका नाम आप लोगोंने सुना है उन जे. कृष्णमूर्ति को देखा है । दोनों की उम्र ८५ वर्ष के ऊपर है । Physical काम, केवल बौद्धिक नहीं । फिर वह दश मील चलने का हो, लिखने का हो । interview देने का हो, भाषण देने का, प्रवास करने का हो । जिन्होंने देखा होगा कृष्णमूर्ति को, आप भी तो जानते हैं म्यान में से तलवार निकालते हैं वैसी तेजस्वी उनकी काया हैं । तीक्ष्ण काया और सीधे बैठना, सीधे उठना, आज भी देखेंगे । पचास साल की उम्र का आदमी भी नहीं कर सकेगा वैसा शरीर का हलन-चलन, बुद्धि का काम वे कर सकते हैं । तो संतोष आहार है ।

मैंने ये घटनाएँ आपको क्यों सुनाईं ? केवल मनोरंजन नहीं, लेकिन उससे कुछ कहना है । आकाश सेवन का मौका तो शहर में रहनेवालों को है ही नहीं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहाँ तो pollution ही आहार बन जाएगा। इतना प्रदूषण है, लेकिन गाँव में वह संभव है।

मुझे बाकी सब छोड़कर के ध्यान दिलाना है संतोष नाम का जो धन लूटा गया, शक्तिहरण हो गया है—उसकी ओर, हमारी पदार्थ-परायणता, उपभोग-परायणता में शक्ति चली जाती है, उसका हमें भान नहीं है। तो सत्संगों द्वारा वह संतोष की शक्ति वापस आ जाय। संतोष की वृत्ति नहीं आती तब तक जीवन सादा नहीं बन सकता। मुझे क्या कहना है? लेकिन जहाँ संतोष का धन है, शक्ति है वहाँ जीवन बड़ा सरल बन जाता है, ऋजु बन जाता है। अर्जुन के जैसा। 'अर्जुन' शब्द का अर्थ जानते हो? **ऋजुता का योग जिस को सिद्ध हुआ वह अर्जुन है।** ऋजुचित्त न बनें तो चाहे जितना विषाद हो, विषादयोग में से बाहर निकालनेवाली पार्थ-सारथि की वाणी फिर अपने को नहीं मिलती। ऋजु बनना पड़ता है। तो सत्संग में से चित्त की ऋजुता आए। सन्तोष का धन, सन्तोष की शक्ति, सन्तोष का आहार करने की शक्ति आए। तब यह परिग्रह और परिग्रह के कारण भय, परिग्रह संरक्षण के लिए ईर्ष्या, क्रोध यह सब जो आज समाज में आया है बदल जायगा। मेरे मित्रो! भारत की दिशा बदल जायगी। भारत की दिशा गलत हो गई।

स्वाधीनता के बाद देश के नव निर्माण में जिन मूल्यों को अधिष्ठान में रखना था वह हम भूल गए। लेकिन होती है भूल। इतने बड़े देश में तीस-पैंतीस साल कौन सी बडी बात है? फिर से देश के निर्माण के लिए मूल्यों की नींव बनानी होगी।

अपने जीवन में, परिवार में हम इस प्रकार से दृष्टि परिवर्तन कर के सत्संग के द्वारा परिस्थिति बदल दें। सत्संग में आज आप जो ढूँढ रहे हैं, शक्तिपात हो, यह सिद्धि, यह तन्त्र मिले, तीन दिन में साक्षात्कार, सात दिन में समाधि लग जाय और इक्कीस दिन में जीवनमुक्त बन जाय। synthetic fertiliser से जल्दी-जल्दी फसल लेने का और बड़ा-बड़ा आकार बनाने का मोह है वैसे अध्यात्म में भी हम को synthetic fertiliser चाहिए। यह सब यदि मनुष्य छोड़ दें और अपने परिश्रम से स्वाश्रयी बनकर, आत्म-साधना से, आत्मबल को प्राप्त करेंगे तो ऐसे आत्मबल संपन्न व्यक्ति जिस समाज में रहते हैं वहाँ आत्मबल एक सामुदायिक बल बनेगा। Spiritual force as a motivation for socio-economic revolution. समाज-परिवर्तन के लिए सब बल हार चुके हैं। अप-बल, तप-बल और बाहु-बल। सब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हार चुके हैं। किसी से समाज परिवर्तन हो नहीं रहा है। विचार, ध्येय, आदर्श सामने रखने से नहीं हो रहा है। विचार ध्येय की बात देश में पहुँचाने से भी नहीं हो रहा है। उस से भी बड़ा हरिनाम का बल चाहिए और आत्म संपन्नता का बल चाहिए।

सत्संग के नाम से, प्रामाणिकता का, कर्तव्यहीनता का, पराश्रयता, पराधीनता का वातावरण, दीनता का, लाचारी का, असहायता का वातावरण इस देश में जो बढता जा रहा है, यह अब मुझ से सहन नहीं होता। इसलिए सत्संग का जो सच्चा अर्थ है—जिसमें से सत्य का भान जाग्रत हो, सत्य से तदाकार वृत्ति बनें और सत्यमय जीवन याने साधन-शुद्धि का जीवन। सत्य तो सारा का सारा आप की पकड में कैसे आएगा? लेकिन साधन-शुद्धि रखेंगे तो जो साध्य है वह अपने आप शुद्ध ही हाथ में आता है। इसलिए सत्संगमें से साधन-शुद्धि, परिवार-शुद्धि, [व्यक्ति-जीवन-शुद्धि लायें। जीवन शुद्ध ढंग से जीने लगेंगे तो चित्त शुद्ध रहता ही है। और जो चित्त शुद्ध है उस में चैतन्य का प्रतिबिंब स्वभाव से ही पड़ता है। चैतन्य के प्रतिबिंब को वहाँ कहीं से लाना नहीं पड़ता है, वह तो अपने आप होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रश्नोत्तरी

दि० २१-१-८२
अपराह्न ३ से ४-३०

प्रश्न—परमात्मा ने वचन दिया है कि में अवतार लूंगा। आज भारत को जो स्थिति है वह अवतार लेने की हो तो है?

उत्तर—अवतरण या अवतार का सम्बन्ध है उद्धार की आकांक्षा से। यदि जनता में उद्धार की उत्कट आकांक्षा है, उत्कट इच्छा है तो इस इच्छा के कारण शक्ति का अवतरण होता है। अभीप्सा और आकांक्षा के साथ शक्तियों का अवतरण या प्रादुर्भाव उनकी अभिव्यक्ति जुड़ी हुई है। जैसे कि देश स्वतन्त्र होना चाहिए यह वासना, यह आकांक्षा सर्व-व्यापक लगभग होती गई। और यह स्वतन्त्रता की आकांक्षा घर, बाहर स्त्रियों में, पुरुषों में जब संचार करने लगी कि अब यह परशासन, विदेशियों का शासन जो है वह सहन नहीं होता, तो कविओं की कविता में, साहित्यिकों के साहित्य में, निबन्धों में, नाटकों में, कलाकारों की कला में, गीतों में सब जगह एक ही भावना का संचार हुआ। यह जब हुआ तब आपने देखा कि इस देश में शक्तियों का अवतरण हुआ। वह व्यक्तिओं के मारफत हुआ हो, वह राजा राम मोहनराय, विद्यासागर, लाल, बाल, पालका हो, धुन एक ही कि देश आजाद बनना ही चाहिए। तो देश की आकांक्षा पूंजीभूत हो कर के एक दिशा में दौड़ने लगी।

इस प्रकार आज जो परिस्थिति है, वह हम से सहन नहीं होती, इस से छुटकारा होना ही चाहिए। इस से देश मुक्त होना ही चाहिए, ऐसी आकांक्षा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभी प्रबल नहीं हुई है। कुछ लोगों को लगता है कि इस में से अपना स्वार्थ बन सकता है, सत्ता मिल सकती है, संपत्ति मिल सकती है, बिना परिश्रम के धन संग्रह हो सकता है तो आज देश के उद्धार की आकांक्षा जो है वह अखंडित नहीं है, अविभाजित नहीं है। सारे के सारे राष्ट्र का मानस एक नहीं है। तो एक तो मुझे यह बतलाना है कि उद्धार की उत्कट आकांक्षा के बिना अवतार या अवतरण शक्य नहीं। हम अपने हृदय को टटोलें।

अपने जीवन को टटोलें तो जो बात मैंने सुबह कही थी, वह अभी भी कहना चाहती हूँ कि हमारे हृदय में राजनैतिक स्वाधीनता के बाद विशेष रूपसे पदार्थ-परायणता बड़ी जबरदस्त बनी है, प्रबल बनी है, प्रखर बनी है। हम अपने बच्चों के लिए, अपने भाईयों के लिए, अपने जमाईयों के लिए, अपनी कन्याओं के लिए क्या चाहते है इस का आप और हम विचार करें। तो कम से कम परिश्रम में अधिक से अधिक धन मिले, बिना परिश्रम के भी मिल जाय तो अच्छा, जीवन का मूल्य छूट गया तो कोई बात नहीं है। देश छोडकर परदेश जाना पड़े तो हर्ज नहीं है। आज धन हमारा उपास्य बन गया है। संपत्ति नहीं, पैसा।

तो इस धनोपार्जन के लिए या सत्ताप्राप्ति के लिए चाहे जो साधन आजमाएँ चाहे जिस माध्यम का उपयोग करें, चाहे जिन मूल्यों को छोड दीजिए, मनुष्यता को भी छोड़ दीजिए कहीं कोई परिवारों में से, मित्र-मण्डली में से, गाँव में से कोई कहता हैं कि यह आप क्या कर रहे है ? हमारे सब के मन में यह जो लालसा है परिश्रम के बिना का धन पाने की यह—भ्रष्टाचार की जननी है। तो घर-घर में हम अपने लिए चाहते हैं रिश्वत लेना-देना, रात के अंधेरे में, पिछले दरवाजे से किसी म्युनिसिपालिटि के कोर्पोरेटर के पास जाकर, गाँव के सरपंच के पास जाकर, किसी M.L.A. के पास जाके, किसी M.P. के पास जाके, मिनिस्टर के पास जा के, खुशामद करके अपने काम निकालने को हम राजी है। देश भर की बात छोड दो। अपन जो कमरे में बैठे है वह अपना विचार करें। संस्था, संगठनों के लिए भ्रष्ट लोगों की खुशामद करना, संस्था के लिए जमीन लेनी हैं, संस्था के लिए मकान बनाना है तो हमारे दिल में उद्धार की इच्छा नहीं है। हमारे दिल में भ्रष्टाचार से मुक्त होने की तडपन नहीं है। भ्रष्टाचार करने का मौका मिल जाय। रिश्वत लेना-देना बंद हो जाय कहते हैं लेकिन मेरा काम हो जाता है तो मैं रिश्वत देकर काम करा सकूं। यह आन्तरविरोध इस देश में है नागरिक में आज यह आंतरिक विच्छेद है, inner psychological slip आ गई है। मूल्यों का रक्षण हो ऐसी abstract desire है, लेकिन मूल्यों का रक्षण करने के लिए मैं आहुति चढ़ा दूंगा—यह तैयारी नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म को जीवित रखने की लोगों की इच्छा है और धर्म टिक नहीं सकता जब तक साधु चरित हमारा न हो। मूल्यों का या धर्म का रक्षण करने के लिए हम तड़पते हैं, छटपटाते हैं तो हमारे हृदय में व्यक्ति या सामुदायिक रीति से धर्मनिष्ठा के रूप में, प्रभु-निष्ठा के रूप में पहले प्रभु प्रकट होंगे। 'परित्राणाय साधूनाम् ।'

विस्तार नहीं करना है। भारत-वर्ष में विशुद्ध धर्म और विशुद्ध मूल्य जीवित रहने ही चाहिएँ, यह चरित्र का पतन और मूल्यों का ह्रास अब सहन नहीं होता तो मेरे परिवार में मूल्यों का पतन नहीं होने दूंगा, चाहे जो कीमत चुकानी पड़े, हम मूल्यों को नहीं छोड़ेंगे इस प्रकार आकुल-व्याकुल होकर कहें, पैसे सोना, हीरा, मोती से अधिक महत्त्व मूल्यों का रहे, तब यह जो धर्म का प्रेम है और धर्म में श्रद्धा है वह किसी न किसी व्यक्ति की चेतना में पुञ्जीभूत बनेगी। अभी धरती पर पाँव रखने को प्रभु को जगह नहीं मिल रही है। प्रभु को यदि अवतार लेना हो तो मनुष्य के हृदय में पहले पाँव रखना पड़ता है।

आज हमारी श्रद्धा शस्त्र में है, हम अपने दिल में यह कहते हैं कि इस से तो यह अच्छा है कि democrasy जाय और dictatorship आ जाय। यह हम कहते रहते हैं और फिर हम कहते हैं कि परमात्मा क्यों नहीं आते? हमारी श्रद्धा तानाशाही में हैं, हमारी श्रद्धा शस्त्र में है भले शस्त्रों से, हिंसा से हो, लेकिन सवाल हल हो सकता हो तो हो जाय। इतना सारा यदि हमारे चित्त में पड़ा हो तो प्रभु पाँव कहाँ रखेंगे? यह मुझे कहिए। तो जब ऐसी अवस्था होगी मूल्यों के संरक्षण के लिए, धर्म-संरक्षण, धर्म-संस्थापना के लिए, वह धर्म हिन्दु, बौद्ध, जैन या इस्लाम धर्म नहीं, मानवधर्म की प्रतिष्ठा अब होनी ही चाहिए, किसी कीमत पर, ऐसी पुकार उठेगी—तब प्रभु आयेंगे।

मैं मनुष्य हूँ इसलिए मैं झूठ नहीं बोल सकता, मनुष्य हूँ इसलिए दूसरे का शोषण नहीं कर सकता, मनुष्य हूँ इसलिए स्त्री का अपमान सह नहीं सकता। इस प्रकार मनुष्य के ही मूल्य, मानवता के मूल्य जब व्यक्तियों के चित्त में निश्चित हो जाएँगे तो आप देखेंगे कि इस देश में कोई न कोई आता है। समय आया तो मोहनदास करमचंद गांधी के हृदय में लोगों की जो आजादी के लिए पुंजीभूत आकांक्षा थी वह केन्द्रित हो गई और मोहनदास करमचंद गांधी अपने जीवन की साधन-शुद्धि, व्यवहार-शुद्धि साधते-साधते महात्मा गांधी बन गए। जीवन की साधना व्यापक बन गई। कवियों के, साहित्यिकों के हृदय में वह आकांक्षा थी, वह पुंजीभूत होकर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टागोर पैदा हो गए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवजवानों के हृदय में तड़पन थी तो कहीं सशस्त्र क्रान्तिवाले तो कहीं अहिंसक क्रान्तिवाले कितने नवजवान निकले ?

आप सौ वर्ष का इतिहास देखिए। भारतीय संस्कृति का जो गौरव है, यह हमारी संस्कृति, यह हमारा धर्म किसी भी देश के किसी भी धर्म से कम नहीं है यह उद्घोष करनेवाले स्वामी विवेकानन्द, वेदों के अपौरुषेयत्व का गान करनेवाले महर्षि अरविन्द, निर्गुण, निराकार शिव सत्ता का अपने मौन से महागान करनेवाले रमण महर्षि कहां से आए ? जवाहरलाल, जयप्रकाश कहाँ से पैदा हुए ? यह जो महामानव होते हैं वह जितने अपने पुण्य से महान् बनते हैं, उतनी ही जनता को आकांक्षा उनको महान् बना देती हैं। हमारा सबका मानस आज जो विभाजित है, दश दिशाओं में दौड़ रहा है वह शक्तियाँ पूंजीभूत होकर के जरूर अवतरित होंगी।

'चलो छोड़ दो न हिन्दुस्तान, जाकर अमेरिका में रहेंगे बेटे के साथ इंग्लैंड में रहेंगे, इस देश में इतनी-इतनी समस्या है, चलो न वहाँ जाकर रहते हैं।' मन में यह हो और यहाँ जो चलता है वह चलने दों, लेकिन अपना काम बन जाय इतना क्षुद्र स्वार्थ यदि है तो फिर कैसे प्रभु अवतार लेंगे ? प्रभु का आश्वासन जरूर है लेकिन उसकी शर्तें पूरी होनी चाहिए।

'अभ्युत्थानाय धर्मस्य...।' अब तो अधर्म का अभ्युत्थान हुआ है, धर्म का प्रेम अभी प्रकट नहीं हो रहा है, शायद होगा। दो-चार-पांच वर्षों में देख रही हूँ कि इस देश में विशुद्ध धर्म के प्रति आकर्षण, उस को निश्चित करने की आकांक्षा थोडी-थोडी जाग रही है। अब यह चारित्रहानि और मूल्यों के पतन की वेदना जरा मुखरित होने लगी है यह बडा शुभ है। इस प्रकार एक तरफ से अमावस की घोर अंधेरी रात है देश पर और दूसरी तरफ से कुछ शुभ लक्षण देख रही हूँ कि लोगों से अब यह स्थिति सहन नहीं हो रही है। यह आगे बढ़ेगी तो इस वेदना की आंच में से विधायक क्रान्ति की धर्मप्राण शक्ति प्रकट होगी। वह अवतार लेंगे तो शंख, चक्र, गदा लेकर थोड़े ही आएँगे ? वह कभी गांधी के हाथ में चरखा बनकर आते हैं, और कभी विनोबा के हृदय में यह भूमिदान ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य, villagisation of land की मारफत उस समस्या का समाधान करने की प्रेरणा देते हैं, तो कभी लोकशाही के संरक्षण के लिए, तानाशाही से देश को बचाने लिए, अपने व्याधि जर्जर शरीर की आहुति डालने को किसी जयप्रकाश को वृद्धावस्था में प्रेरित करते हैं। यह सब अवतार ही तो है रे ! अवतार का मतलब कोई गरुड़ पर चढ़कर आए ऐसा तो नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रश्न—विचारों का आना और विचार करना यह दोनों अगर अलग प्रवृत्ति है तो इन दोनों के बीच का फर्क स्पष्ट करने की प्रार्थना है।

उत्तर—देखो भाई! क्रिया दो प्रकार की होती है न? एक ऐच्छिक क्रिया यानी voluntary activity और दूसरी होती है अनैच्छिक यानी involuntary activity. विचार करना यानी अमुक विषय के बारे में, अमुक हेतु से मैं विचार करूंगा। उसमें "मैं विचार करूंगा" इस प्रकार का भाव होता है, विकल्प होता है, और क्रिया होती है। यह स्वायत्त क्रिया है, स्वैच्छिक क्रिया है।

अब कोई शांति से बैठ गया है कि मुझे विचार करना नहीं है, न कुछ अनुभूति प्राप्त करनी है, न कुछ देखना है, वह तो केवल होने की अवस्था में प्रवेश पाने के लिए बैठ गया है तो उनकी voluntary activity बन्द है विचार करने की। "मैं विचार करूंगा" यह भाव नहीं है, विचार करने का हेतु या अभिसन्धि नहीं है और चुपचाप बैठा है। चुपचाप बैठ गया हो लेकिन उसके अंदर जो विचार के चक्र हैं, चित्त में जो संस्कार पडे हुए हैं, अनुभूतियाँ पड़ी हुई हैं, ज्ञान पड़ा है वह सब शब्दात्मक है। संस्कार मात्र शब्दात्मक है। तो यह चुप बैठा है। अब वह विचारों को जो भूतकाल में गति मिली है माता-पिता के जीवन में से भी तो गति मिली है तो heriditary involuntary momentum यानी आनुवंशिक अनैच्छिक–परायत्त गति मन के अंदर चलती है। विचार करना नहीं है, लेकिन विचार आते हुए उसको दीखते हैं इतना दोनों में फर्क है।

प्रश्न—मौन एक प्रवृत्ति है, प्रक्रिया है और ध्यान एक स्थिति है। विचार के साथका तादात्म्य तोड़ने से मन की एक गति होती है इस अर्थ में मौन एक प्रवृत्ति है ऐसी हमारी समझ बनी रही है तो क्या हमारी यह समझ ठीक है?

उत्तर—मुझे ऐसा लगता है कि मौन के विषय में शायद मैं ठीक से कह नहीं पाई। इसलिए ऐसी कुछ गलत धारणा बनी। इसमें कुछ स्पष्टता का मेरी ओर से अभाव रहा होगा। मौन न प्रवृत्ति है, न निवृत्ति है, वह तो वृत्तियों का लय है। वहाँ विचार जो आते हैं उसको देखने से हमने प्रारंभ किया। हम बैठे, कर्ता और भोक्ता भावको छोड दिया जैसे कोट उतार के रखते हैं, चप्पल उतार के रखते हैं, टोपी उतार के रखते हैं वैसे हमने अपना करनेपनका भाव और कुछ पाने का जो भाव रखा तो दो भाव कर्ता, भोक्ता दोनों को हमने अलग रख दिया और बैठ गए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बैठने पर जो अंदर पड़ा हुआ है वह दीखने लगा । अंदर की गतियाँ हैं वह देखने लगे । जो दीखता है उसको न हमने रोका, न टोका न अपनाया, न दबाया, कुछ भी नहीं किया तो वह दीखने का अंत आता है यह मैंने कहा । अब दीखने का अंत आता है इसलिए यह जो द्रष्टृत्व का अभ्यास है, The learning of observation अवलोकन का अभ्यास है यह करना पड़ता है । यह जो प्रतिक्रियामुक्त अवलोकन है । देखने लगे और मन में भाव उठा कि यह गलत है, सही है इत्यादि वह न उठें ऐसा निराभय अवलोकन, निर्दोष अवलोकन, (innocent obeservation) यह सीखना पडता है, इसका शिक्षण लेना पड़ता है । तो यह जो हम शिक्षण लेते हैं वहाँ आप यदि कहेंगे कि कुछ थोड़ा–लेश संकल्प है और लेश क्रिया है तो यह मैं मान लूंगी लेकिन देखते–देखते जहाँ दृश्यों का अंत आया, कुछ भी नहीं दीखता है ऐसी अवस्था में आए वहाँ देखनेवाला जो केन्द्र था वह भी लोप हो गया ।

यह मौनावस्था अपने आप आती है । यह नहीं कि हमने विचारों को तोड़ दिया, दबा दिया । विचारों को दबा देने से वह और तेज बनकर सामने चले आएँगे । रोकने से, दबाने से एक तरफ से दबाइए, दूसरी तरफ से उठेंगे, इसलिए दबाने से तोड़ने से मौन नहीं होता है । मौन अपने में क्रिया भी नहीं है, प्रक्रिया भी नहीं है, प्रवृत्ति भी नहीं है केवल आप मनको शांत होने का अवसर दें तो मौन नाम की घटना तक आप पहुँच जाते हैं ।

अब मौन को मैंने ध्यान क्यों नहीं कहा ? ध्यानावस्था को उससे अलग क्यों कहा ? क्योंकि मौन यदि सच्चा है, व्यक्ति चेतना के संकल्प–विकल्प सर्वथा वहाँ शांत हैं, विचारों के तनाव, दबाव सर्वथा शमन हो गए हैं ऐसी जो उपशम की अवस्था है उसमें व्यक्तिचेतना का उपशमन होने से भी या उसकी गतियों का उपशमन होने पर भी वैश्विक चेतना The universal the cosmic consciousness जिसको आज सवेरे हम लोगोंने प्रज्ञा कहा, Perceptive sensitivity कहा, यह जो पश्यन्ती वाक् जैसी प्रज्ञा जाग्रत होती है इस में जबरदस्त गति है, इसका momentum तो बुद्धि से भी ज्यादा है ।

विचार की गति से इस प्रज्ञा की गति अधिक है, क्योंकि वह वैश्विक है । एक केन्द्र से वह बंधी हुई नहीं है, वह आपकी आनुवंशिकता का अंश नहीं है, आपकी इच्छा पूर्वक क्रिया का भाग नहीं है । इसलिए न है केन्द्र, न है परिधि । इतनी विलक्षण, विस्मयकारी गति से वह वैश्विक चेतना काम करती है । व्यक्ति चेतना शांत है, वैश्विक चेतना कार्यशील, कार्य प्रवण है, यह अनुभव मौन में होता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। वह व्यक्ति विचार नहीं कर रही है फिर भी जिस प्रज्ञा को, जिस चेतनाको वैश्विक चेतना कहा वह वैश्विक चेतना की गति जो अद्‌भुत कार्य करती है, अद्‌भुत चमत्कार व्यक्ति के जीवन में घटित करती है, वह लोगों के ध्यान में आते हैं, लोग उसके प्रति आकर्षित होते हैं। उसको असामान्य, असाधारण कहकर पूजा करते हैं, और उस व्यक्ति के जीवन में यदि अहोभाव पैदा हुआ तो ? कि मैं सचमुच कोई विशिष्ट व्यक्ति हूँ, मैं असामान्य हूँ, मैं कुछ हूँ, यह मेरा मिशन है, यह मेरा कर्तव्य है, मुझे यह करना है इस प्रकार के भाव उस उच्च कक्षा में जाकर यदि पैदा हो गए तो आदमी वहाँ जाकर रुक जाता है।

यदि वैश्विक चेतना की गति ऐसे आई, व्यक्त हुई और शांत हुई उसको रोका नहीं, उस पर ममभाव का आवरण नहीं डाला। कार्य हुए तो होने दिए, न हुए तो कुछ नहीं। इस प्रकार से तटस्थता यदि रही, मध्यस्थता यदि रही तो तो वह गति शांत होती है। उसके बाद ध्यानावस्था है। लेकिन ध्यानावस्था आगे है कहने का मतलब मौन प्रक्रिया है ऐसा नहीं होता, इसका विचार करके तीनों का फर्क समझ लीजिए। जैसे विचार करना यह जो क्रियापद लगाया, वहाँ "मैं विचार करता हूँ" संकल्प पूर्वक, इच्छा पूर्वक, हेतुपूर्वक थोड़े समय के लिए है। कहीं मुझे कुछ प्राप्त करना है, कहीं कुछ करना है, इसलिए वहाँ कर्तव्य है, गन्तव्य है, प्राप्तव्य है। विचार आते हैं याने जो अंदर भरी पडी गति है वह प्रकट होती है, यह जैसा फर्क है वैसे मौन की अवस्था, ध्यानावस्था में भी फर्क है लेकिन मौन अपने में प्रक्रिया से बंधी हुई कोई अवस्था, क्रिया से बँधी हुई दशा नहीं है।

प्रश्न—देश में एक विचारधारा ऐसी चल रही है कि हिन्दू संगठन द्वारा ही भारत वर्ष और समग्र विश्व का अभ्युदय हो सकता है—ता इस विषय में आप कुछ कहेंगे ?

उत्तर—मैं मानती हूँ कि इस प्रश्न का उत्तर मैं देने जाऊँ तो शायद आप में से बहुसंख्य लोग मुझ से नाराज हो जाएंगे। इसलिए नाराज होंगे कि मुझे दिन में मशाल लेकर ढूँढ़ू तो भी हिन्दू मिलता नहीं है। इस देश में मुझे कोई हिन्दु दिखाई नहीं देता। क्योंकि मैं जिस को पूछूं और जिस से बात करने जाऊँ तो वह कहेगा "मैं ब्राह्मण हूँ," "नागर हूँ," "श्रीमाली ब्राह्मण हूँ," महाराष्ट्र जांय तो देशस्थ, कोंकणस्थ ब्राह्मण। या कहेंगे मैं तो गिरासदार हूँ, मैं पटेल हूँ, अरे ! पटेल है, कणबी है, गिरासदार है ब्राह्मण है तो वह हिन्दू कहाँ गया ? रोजी, रोटी,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बेटी आदि व्यवहार में, सुबह से रात तक के चेतना के व्यवहार में हिन्दुत्व का तो कहीं भान नहीं है ? ज्ञातियों का भान है, ज्ञातियों का अभिमान है । जैनों में यही होगी, वैष्णवों में इसी रीति से काम होगा—दूसरी रीति चल नहीं सकती। और फिर कहते है हिन्दु धर्म का संगठन करेंगे । कहाँ है हिन्दू धर्मग्रंथों में ? पहले हिन्दु को तो लाओ ।

ज्ञाति चेतना, संप्रदाय चेतना से ऊपर उठना बच्चों को कोई सिखाओ तो! आप कहेंगे कि आज कलके स्कूल, कॉलेज में पढ़नेवाले जो बच्चे हैं, उनमें ज्ञाति या संप्रदाय नहीं है । उनमें जाति तो गई, जाति के संस्कार गए लेकिन धर्म का प्रेम नहीं आया है । वह तो बेचारे धर्मनिरपेक्ष नहीं धर्मभ्रष्ट हैं । यानी हिन्दुधर्म वस्तु क्या है ? वैदिक संस्कृति को मानेंगे नहीं, वेद नहीं, उपनिषदों का,, गीता का, भागवत का सम्बन्ध नहीं है संस्कारों का चेतना से । पहनावे में भारतीयत्व का संस्कार नहीं, हिन्दुत्व का नहीं । चिन्तन में, अध्ययन में जो धर्मग्रंथ है उसका सम्बन्ध नहीं है । खान में नहीं, पान में नहीं, भाषा में नहीं, बोली में नहीं, कहाँ टिकेगा हिन्दुत्व ? ग्रन्थालयों में केवल पोथियाँ दिखाने से ? और केवल कथा-कीर्तन करने से ? इसलिए मित्रो ! इस बहन की तीखी वेदना को समझ लेना ।

हम हिन्दु हैं इस प्रकार की चेतना को जगाना पडेगा । आज हिन्दु चेतना कब जाग उठती है ? मुसलमान के विरोध में । कोई तमाचा जड दें, कोई कुछ करें तो इकट्ठे होते हैं यह नकारात्मक एकता है हिन्दु समाज की । हिन्दु जो ज्ञाति और संप्रदाय से उपर, ज्ञाति और संप्रदायों से गहरी और उससे ऊपर उठने वाली, उससे अतीत जाने वाली जो हिन्दुत्व की चेतना है वह positive, भावरूप, विधायक हिन्दुत्व की चेतना—जिसमें परमात्मा है यह श्रद्धा और मैं आत्मा हूँ यह श्रद्धा जगाई जाती है वह जागे, तो देहार्थे आत्मा को घिसना नहीं, आत्मार्थ देह का उपयोग करना, इतना जमीन आसमान का फ़र्क हो जायगा । हिन्दु बनना होगा तो !

वह देह–परायण, उपभोग- परायण, पदार्थ–परायण संस्कृति नहीं है, वह तो आत्म–परायण संस्कृति है, परमात्म–परायण संस्कृति है । यहाँ उद्घोष है हजारों वर्षों से कि प्रभु है । इसलिए पहले हिन्दुत्व क्या है ? उसके आधार क्या है ? तत्त्वतः उसका इतिहास क्या है ? यह सिखाइए । पहले हिन्दु पैदा करो । उठते, बैठते, राजनीति में, अर्थनीति में यह जो छोटे–छोटे घोंसले बने हैं, छोटी–छोटी वाड़ाबंदी बन गई हैं ज्ञातियों की । गाँव में जाओ तो आज गाँव की एकता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है कहीं ! बंट गए है गाँव, कायस्थों के गाँव, ब्राह्मणों के गाँव, पटेलों के गाँव, गिरासदारों के गाँव, कणबीओं के गाँव इस प्रकार से गाँव बँट गये हैं। पहले भी ये ज्ञातियाँ थीं फिर भी कुछ भाव हिन्दुत्व का रहा था आज वह चला गया है। इसलिए किसी के खिलाफ नहीं किसी के विरोध में नहीं, लेकिन स्वयंभू भावरूप हिन्दु की चेतना को जगाना आज आवश्यक है। यह पहले जगाइये तब संगठन की बात होगी।

आज का संगठन इस्लाम का द्वेष करना, मुसलमान का द्वेष करना, और अब यह हरिजन या अवर्ण कहते हो उनका बहु संख्या में धर्मान्तर होने लगा और मध्यपूर्वक के देशों को इस धर्मान्तर में कुछ रुचि है और कुछ उनका स्वार्थ है इससे अब हिन्दु को, सवर्ण को ध्यान में आया कि गांधीजी ने जो अस्पृश्य का उद्धार कहा था, वह ठीक कहा था। अब ध्यान में आने लगा। हमारा संख्याबल घटेगा इस डर से और किसीका संख्याबल बढेगा इस भय से अब जागृत हुए हैं यह जागृति भी निषेधात्मक है। यह भी विधायक नहीं है इसलिए 'मैं हिन्दु हूँ' कहने में मुझे शरम नहीं है लेकिन मेरा हिन्दुत्व न इस्लाम विरोधी है न क्रिश्चियानीटी विरोधी है, मेरा हिन्दुत्व सर्वसमावेशक इसमें सब कुछ समा जाता है। यह विरोधों का परिहार करनेवाला और विशेषताओं का जतन करनेवाला मेरा हिन्दुत्व है तो ऐसे भावरूप विधायक हिन्दुत्व के संस्कार विद्यालयों में, महाविद्यालयों में देकर हिन्दु बनाओ। बाद में उनके संगठन की बात होगी।

एक निरामय, भावरूप, विधायक हिन्दुत्व की चेतना इस देश में जाग उठेगी तो आज यह ज्ञातियों में जो बँटा हुआ है, इतना क्षत-विक्षत हिन्दु समाज आज है, समाज में एकदम टुकड़े-टुकड़े पड़े हुए है, वह सुंदर बन जायगा। कोई सुंदर वस्त्र हो और उसको कोई नादान व्यक्ति काट करके टुकड़े-टुकड़े कर दें ऐसा हिन्दु समाज आज टुकडों में बँटा है। इन टुकड़ों को सीने जायेंगे तो गुदडी बनेगी लेकिन कोई सुंदर-सा वस्त्र उनसे नहीं बन पाता। इसलिए स्पर्श करना है चेतना को, उसको जगाइये। उसकी बहुत आवश्यकता हैं लेकिन मुझे इससे अधिक प्रश्न के उत्तर में कहना प्रस्तुत नहीं लगता।

प्रश्न—ऐसा कहा जाता है कि तुरीया की स्थिति अनेक जन्मों की तपस्या का फल है तो पुनर्जन्म का अनुसंधान वर्तमान शरीर के साथ कैसे होता है ?

उत्तर—पता नहीं जन्म शब्द का अर्थ आप क्या करते हैं। चित्त में वृत्ति उठी कि आपका एक जन्म हुआ। एक विकार उठा, एक वृत्ति उठी, एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विचार उठा तो एक जन्म का सामान आपने जुटा लिया । वह तो जो prag-metic religion वाले बहुत ही वस्तुनिष्ठ धर्म को सोचनेवाले लोग थे उन्होंने ही यह राग–द्वेष से मुक्त हाने का, वीतराग का गान गाया––

"वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।"

इस पर से ब्राह्मीदशा की बात की, वह बडी समझदारी से की है । तो एक–एक वृत्ति और एक–एक विचार मन में आते जाते हैं, सब वृत्तियों को हम जी नहीं पाते, सब इच्छाओं को, वासनाओं को हम पूरा नहीं कर पाते हैं, ये जो अधूरी इच्छाएँ, वासनाएँ हैं यह अधूरी महेच्छाएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ है ये जाती कहाँ है ? तो वह हमारे शरीर से निकली, विचार आया, वृत्ति आई यानी उसके साथ शब्द उठा । बिना शब्द के वृत्ति उठती है क्या ? देख लीजिए कभी बैठ करके ।

बिना शब्द के वृत्ति नहीं, विचार नहीं, विकल्प नहीं, मन में कुछ भी उठा । शब्द के साथ अर्थ उठा, भाव उठा तो यह जो उठा है जिसको पूरा कर पाएँ, वह यदि राग–द्वेष के बिना पूरा कर पाएँ तो वह खतम हो गया, उसका बीज जल गया वहाँ । लेकिन इच्छाओं को पूरी करते–करते यदि नए राग–द्वेष पैदा किए तो एक को खतम करने में चार को पैदा कर लिया । यह हिसाब है, जीवन बडा गणित पर आधारित है । जो पूरी नहीं कर पाए तो अतृप्ति की एक वासना उस में है लेकिन यह जो इच्छाएँ, विचार, वृत्तियाँ शरीर से बाहर निकलते हैं; जैसे श्वास बाहर निकलते हैं वैसे, ये मनुष्य के आसपास वातावरण में स्पंदनों के रूप में तैरते रहते है, बहुत सूक्ष्म रूप से । इन में जो कोई प्रबल होगी । बार–बार इच्छा उठती हैं, बार–बार वृत्ति उठती है तो जैसे कोई स्पन्दनों की राशि बनती है । वैसे आकाश में, शून्य में बनतो है । शरीर भले छूट जाय वह स्पन्दनात्मक राशि जो है, पुनरावर्तित विचारों की, वृत्तियों की, इच्छाओं की, वह नष्ट नहीं होती । विचार के मरण नहीं है तो शरीर भले छूट जाय वह स्पन्दन राशि है उनको जहाँ अनुकुल स्थान मिले यानी किसी भी दंपति में, पति–पत्नी में, किसी भी एक व्यक्ति में वह वासना, वह वृत्ति, वह इच्छा प्रबल होगी ऐसे दंपति के यहाँ फिर वह रूप धारण करती हैं, मनुष्य देह में । वह आकर्षित होकर के चली आती है तो इस प्रकार से पुनर्जन्म जो हैं वह हमारे विचारों के विकारों के, वासना के, वृत्तियों के साथ जुड़े हुए हैं ।

वह जैसे है वैसे यह तुरीयावस्था हैं । विचारमुक्त, विकार मुक्त अवस्था में रहने का जिस व्यक्ति ने अभ्यास किया है उसके लिए प्राप्त होनेवाली यह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशा हैं। अनेक जन्मों से ही मिलेगी ऐसा नहीं हैं। एक जन्म में भी तो मिल सकती है—

"गजा वगरनो हाल मनोरथरूप जो,
तो पण निश्चय राजचन्द्र मन ने रह्यो,
प्रभु आज्ञा ए थाशुं ते ज स्वरुप जो,
अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?"

एक भव में, एक जन्म में वह अवस्था प्राप्त हो सकती है। आज मेरे बससे बाहर लगती हो, लेकिन राजचन्द्र के मन में निश्चय है कि इसी भव में इसी जन्म में वह सिद्ध होगी। और जीवन कितना ? राजचंद्र नामधारी उस देह का तैंतीस—चौंतीस वर्ष का। व्यापारी और गृहस्थाश्रमी व्यक्ति। ऐसे तो अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। निरक्षर गदाधर रामकृष्ण परमहंस बन सकता है। अनेक मानसिक कमजोरियों के बावजूद मोहनचंद गाँधी महात्मा गाँधी बन सकते हैं। नरेन्द्र विवेकानन्द बन सकते हैं, इसलिए तुरीयावस्था के लिए अनेक जन्मों की आवश्यकता नहीं है।

उत्कटता की आवश्यकता है, तीव्र संवेग की आवश्यकता है। वह यदि है तो व्यवहार करते हुए भी विकारमुक्त, विचारमुक्त रहने का अभ्यास करना संभव है। जहाँ चित्त की दशा निर्विकार, निर्विचार हो गई, वहाँ तुरीयावस्था अपने आप जाग्रत होती है।

प्रश्न—Telepathy का प्रयोग कुछ ऐसे लोगों से भी होता है जिनको साधना से कुछ रिश्ता नहीं है, यह बात समझ में नहीं आती।

उत्तर—बात क्यों समझ में नहीं आती भाई ! रविशंकर नाम के भाई जो आज इतनी सुन्दर सितार बजाते हैं या यहूदी मेन्युहीन नाम के सज्जन वायोलिन सुन्दर बजाते हैं वह यहूदी पांच, छः साल के थे, अपने साथ एक विलक्षण शक्ति लेकर आए थे। छः साल का बच्चा और उसने वायोलीन ले लिया। उसकी माँ उसको वायोलीन के शिक्षक के पास ले गई तो शिक्षक ने हँसते-हँसते कहा कि तुम थोड़ा बजा के मुझे दिखाओगे ? यहूदी बजाने लगे। उनका सुनते ही शिक्षक अवाक्। उसने कहा इस बच्चे से मुझे सीखना पड़ेगा। कोई ऐसी कुछ गाने की शक्ति लेकर आता है, कोई कला की शक्ति लेकर आता है-चित्रकला की, शिल्प-कला की। तो वैसे ही यह जो सह संवेदना है अत्यंत तरल, सूक्ष्म संवेदना जिसको telepathy कहते हो, सह-संवेदना कहते हो, वह शक्ति व्यक्ति में आपको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखाई देंगी। और अत्यन्त उत्कट प्रेम हो वहाँ शक्ति बहुत जल्दी जाग्रत हो जाती है। बच्चा कहो दूर देश में है और माँ को घर बैठे पता चलता है कि उसकी तबियत ठीक नहीं है, या वह कुछ मुश्किल में पड़ा हुआ है। या बच्चे को माँ का पता चल जाता है। ऐसा तो मित्रों में होता है, पति–पत्नी में होता है, माँ–बच्चे में होता है।

इसलिए यह telepathy किसी में प्रकट हुई, किसी व्यक्तियों में, एक–एक व्यक्ति में जन्मगत शक्ति लेकर बच्चे आते हैं, तो उनका प्रकट होना कोई अनुभव की घटना नहीं है। आप जानते होंगे कि आज रशिया में telepathy का सह संवेदना का एक विज्ञान बना लिया है क्योंकि आनेवाले दश वर्षों में मनुष्य चंद्रमा पर बसेंगे तो उनकी क्या इच्छा है, क्या आकांक्षा है जानना पडेगा। तो धरती पर जो लोग रहेंगे उनके बीच का जो communication है वह रशियन लोगों का मानना है कि telepathy नाम की जो शक्ति है उससे बहुत जल्दी हो सकेगा।

प्रश्न—कृपया मन्त्र–जप के विषय में कुछ समझाइये।

उत्तर—मन्त्र की बात, 'मननात् त्रायते।' अर्थभावन करने के लिए शारीरिक, मानसिक व्याधि को दूर करने के लिए मंत्र है। सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करने के लिए, उसे शक्तिशाली बनाने के लिए मंत्र है। मन्त्र शांति से बैठकर करना चाहिए। मन्त्र जप करते हैं क्योंकि मन शांति से बैठता नहीं तो उसको थोड़ा चारा दे दिया, कोई हर्ज नहीं मगर मन्त्र करते–करते मैं कर रहा हूँ यह भी शांत हो जाय तो साधना बन जाती है। मन्त्र–जप करते हुए कुछ शक्तियाँ जाग्रत हुईं तो लक्ष्य वहाँ नहीं, इसका उपभोग भी नहीं, सकाम मन्त्र–जप नहीं, गिन–गिन के नहीं केवल प्रेम के कारण हो रहा हैं। मुझे ऐसा दिखता है कि विक्षिप्त, चंचल मन को शांत करने के लिए मंत्र है। अर्थ के भावन के लिए यह क्रिया है। relaxation of the mind है। मन्त्र जप कर रहा हूँ तो मेरा कोई अकल्याण नहीं होगा वह श्रद्धा, इसलिए भय चला गया तो शांति मिली। मन्त्र का सहारा कोई हानिकारक बात नहीं है।

सब लोग कहते हैं कि माया भगवान् की है परन्तु इस माया की भारी पकड़ मनुष्य पर है, तो उसमें से छूटने के लिए क्या करना चाहिये?

उत्तर—छूटना किसलिये भाई! उसके साथ संवाद साध कर जीना। देखो भाई! अध्यात्म में न कुछ छोड़ना पड़ता है, न कुछ पकड़ना पड़ता है। आखिर माया यह जो व्यक्त पसारा है इसको कह रहे हो न? यह जो पदार्थ की अनंतताएँ हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनंतरूप, अनंतरंग, अनेक रस यह जो पसारा है। दशेन्द्रियों के लिए उपभोग करने लायक विषयों की अनन्तता है इसी को माया कह रहे हो न? अब यह जो पदार्थ है, यह प्रभु की विभूति है, यह पावनकारी है, मंगलकारी है। विषयों के रूप से हमको स्पर्श करने के लिए परम कृपालु प्रभु अवतीर्ण हुए हैं। ऐसा भाव करो न? "विषयचि अवघा झाला नारायण।" तुकाराम महाराष्ट्र में हुए। वह बहुत चतुर बनिया थे। उन्होंने कहा रे! एक को छोड़ूँ, दो को छोड़ूं, कहाँ तक छोड़ूं? देह में बैठा हूँ। अन्न, वस्त्र, आच्छादन सभी आवश्यक है। आँख खोलूँ तो सामने विषय ही दीखते है तो उन्होंने युक्ति की।

"विषयचि अवघा झाला नारायण।"

विषय—मात्र में उनको नारायण दीखने लगे। उन्होंने यह उपासना की कि केवल एक विग्रह में नहीं, विषय को प्रभु का विग्रह बनाया, अपनी श्रद्धा से। अब उनको मैं महावीर न कहूँ तो क्या कहूँ?

"जन्म घेणे लागे वासनेचा सङ्गे।
ते तो झाली साङ्ग हरिरूप॥"—तुकाराम

कहते हैं कि जिस वासना के कारण जन्म लेना पड़ता है उस वासनाओं से मैंने हरि का वरण करा लिया। दिन रात उस वासना को रटने के लिए एक नाम दे दिया—हरि, हरि, विठ्ठल, विठ्ठल,

उठता विठ्ठल, बेसतां विठ्ठल, खातां विठ्ठळ, पीतां विठ्ठल."

मैंने उस वासना को एक विषय दे दिया, श्रीहरि, विठ्ठल! अब वह वासना जो है, जिसके कारण जन्म लेना पड़े वह हरिरूप हो गई इसलिए हरि को लाचार बनकरके मुझे मुक्त बनाना पड़ा है। वह बड़े चतुर इसलिए एक तो उन्होंने विषयों को प्रभु का विग्रह बना लिया और वासना को हरिमयी बना दिया, ऐसे दो काम कर दिए उन्होंने।

हम माया से छूट करके भागेंगे कहाँ?

माया बड़ी ठगनी, महा ठगिनी हम जानी।
जोगी के जोगन हो बैठी, राजा के घर रानी॥

वह जोगी के घर में या दिल में जोगन बनकर बैठती है। राजा के घर रानी बनकर बैठती है इसलिए यह माया वासना का रूप लेकर अंदर बैठी है, बाहर से नहीं बाँधती है रे! अंदर बाँधती है। इसलिए माया की जड़ जो अन्दर हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहीं यदि उसे प्रभु को विभूति बना दें। और प्रभु की उपासना करने के रूप में यदि विषयों का सेवन हो तो सारा का सारा जीवन विषयों के बीच, मनुष्यों के बीच रहते हुए भी एक पावनकारी, निर्मल मनोहारिणी कर्मगंगा, वाक्‌गंगा, विचार-गंगा बन जाता है। तो जीवन को पावन बनाना है। माया और मायापति, ब्रह्म और माया यह सारा जो उपद्व्याप, घटाटोप है वह शास्त्रियों को करने दो न ?

आप और हम सामान्य व्यक्ति हैं, हमको तो जीने से मतलब है। यह आम का पेड़ किसने लगाया ? उसकी क्या variety है ? कितने साल में फल आया ? यह सब गिनने बैठेंगे, तो फल खाने को मौसम चली जायगी। इसलिए मनुष्य देह फल खाने की मौसम है, इसको मत जाने दीजिए अपने हाथ से। जिंदगी मुश्किल से साठ–सत्तर साल की होती है, सौ साल की बहुत कम। और ६०–७० में से ३०–४०–५० निकल गए होते हैं इसलिए हम चेत जाँय। माया को छोड़ना और कैसे छोड़ना इसमें मत पड़िए। कुछ भी मत छोड़िए, पकड़िए नहीं कुछ भी बस इतना तरीका सीख लें। छोड़िए नहीं और पकड़िए भी नहीं, फिर जिंदगी का मजा देखिए यह कैसे आता है ? यहाँ वासना नाम का, अहंकार नामका जो सिर है उसका उतारने की बात है।

यहाँ सर देकर होते हैं सौदे,
आशिकी इतनी सस्ती नहीं है,
यहाँ हर दम पे होती है पूजा,
सिर झुकाने की फुरसत नहीं है।

यहाँ तो वासना की केवल आहूति देनी है। माया के बीच भले बैठें। नदी के बीच नाव चलती है न ? वैसा हमारा जीवन इन विषयों के बीच गुजर जायगा।

प्रश्न—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ऐसे चार पुरुषार्थ हैं उसमें अर्थ की मनुष्य पर भारी पकड़ हैं, उसमें से छूटने के लिये क्या करें ?

उत्तर—इसकी बात तो आज सुबह के प्रवचन में मैंने की कि संतोष का आहार करें ताकि अर्थ की आसक्ति दूर हो। अर्थ का जीवन में महत्त्व नहीं है, ऐसा मैं नहीं कहूँगी। अपनी जगह अर्थ भी पुरुषार्थ है लेकिन अर्थ साध्य न बने, साधन बने। अब मुझे याद आई एक घटना। हमारी एक सहेली है सरला बिरला। घनश्यामदास बिरला की पुत्रवधू। इस साल ज्ञानेश्वरी का पारायण करने कलकत्ते में पहुँची। वहाँ स्वामी अखंडानन्द सरस्वती महाराज थे। तो सरला का बेटा जो है आदित्य वह आया था स्वामीजी से मिलने।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसने कहा महाराज। यह जो धंधा है, व्यापार है इसका विस्तार कितना करें ? और कहाँ तक करना ? तो महाराज ने कहा कि मनुष्यता छूटे नहीं इतना देखकर विस्तार करो। तुम मनुष्य मिट जाओ इतना विस्तार न करो। तो आदित्य ने कहा कि फिर मनुष्यता खतम न हो, या मनुष्य मिटे नहीं इसकी कोई पहचान है ? तो बोले देख, पैसे कमाने में, धंधे का विस्तार करने में तू अपने मात-पिता का पुत्र है यह यदि भूल जायगा, माता-पिता के पास आने के, रहने के लिए तेरे पास समय नहीं, धंधा करने में इतने व्यस्त हैं कि पत्नी के पास, बच्चों के पास बैठने का समय नहीं, बच्चे क्या पढ़ रहे हैं ? उनके संस्कार क्या हैं ? यह देखने का तेरे पास समय महीं, तेरे मित्रों के साथ बातचीत करने का समय नहीं। तुझे हिंदुस्तान में कहीं निसर्ग देखने के लिए घूमने का समय नहीं। व्यापार और उद्योग तुझे इतना जकड़ लेगा कि मनुष्य के जो पहलू हैं जीवन के यह सब यदि उपेक्षित रह जाएँगे तो वह अर्थ व्यर्थ नहीं अनर्थ हो जायगा। और तेरी जिंदगी के साथ अनर्थ करेगा। इसलिए इतना ही विस्तार करना कि तेरी मनुष्यता बनी रहे।

यह नहीं कहा कि महत्त्वाकांक्षा खराब है तू विस्तार मत कर। बड़ी कुशलता से उत्तर दिया। रोकना नहीं कहा। बोले कि जितना चाहे विस्तार करो, लेकिन यह शर्त है मेरी। वैसे अर्थ की पकड़ छोड़ने जाओगे, वैराग्य को जितना पकड़ने जाओगे, उतना पीछे के दरवाजे से आकर अर्थ सिर पर चढ़ेगा। इसलिए छोड़ने की भाषा ही छोड़ दो। वह पकड़ जो हुई है इसमें अर्थ साध्य नहीं, साधन है। और यदि वह साध्य नहीं है, साधन है तो मैं मेरे सभी जीवनमूल्यों की—जो मूल्य मैं मेरे बच्चे के जीवन में देखना चाहता हूँ, जो मूल्य मैं समाज में देखना चाहता हूँ, —उनकी आहुति चढ़ाकर मैं अर्थ-पैसा घर में नहीं लाऊँगा। दवा के लिए जैसे कुछ अनुपान होते हैं वैसे यह अर्थ का जो परिग्रह है उसमें कुछ पथ्य सम्हालना होगा। यदि इसमें पथ्य सम्हालें तो अर्थ के साथ-साथ एक खानदानी आती है।

आज aquirement at the cost of culture है, यह दुर्भाग्य है, बाकी संपन्नता न हो, अर्थ घर में न आवे ऐसा कहनेवालों में मैं नहीं हूँ। यदि समाज परिवर्तन आए और यह सब प्रकार की संपन्नता, रसिकता, कला, साहित्य, संगीत सब नष्ट हो जाय ऐसा नहीं है, न चाहती हूँ। जीवन दरिद्र न बने लेकिन अर्थ अनर्थकारी न बनें, अर्थ के लिए मूल्यों को आहुति देनी न पड़े इतना देख करके। जितना अर्थ घर में आता है आज इस देश में, चालीस प्रतिशत (फीसदी) लोग गरीबी की रेखा से भी नीचे रहते हैं तो करोड़पति बनने की, लखपति बनने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की मेरी इच्छा देश-द्रोह है। यह यदि समझो तो मेरी शक्ति के अनुसार मैं धन कमाऊँ। हजार रुपया कमाऊँ कि दो हजार रुपया कमाऊँ, किसी भी मूल्य की हानि किए बिना, रिश्वत या भ्रष्टाचार में गए बिना तो वह अर्थ अनर्थ नहीं करेगा। प्राप्ति में चारित्र्य का हनन है तो वह योग्य नहीं, इष्ट नहीं, क्योंकि मेरे बच्चों का पतन मैं देखना नहीं चाहता, समाज का पतन मैं देखना नहीं चाहता।

इसलिए जिसको enlightened self interest कहा है, समाजवादियों, पूँजीवादियों ने जो कहा है प्रबुद्ध स्वार्थ यानी प्रबुद्ध रीति से अपने स्वार्थ सिद्ध करें। इतना मैं संक्षेप में कह सकती हूँ। आप कह रहे हैं कि अर्थ की पकड़ है। लेकिन वह कब है? धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नाम आपने गिनाये। तो पहले धर्म क्या है? वह समझ लेते हैं तो अर्थ प्राप्ति में क्या पथ्य रखने हैं? क्या अनुपान है यह ध्यान में आएगा। और यदि सामने मुक्ति का, मोक्ष का ध्येय खड़ा है यानी वीतराग अवस्था में यदि जाना है देह छूटने से पहले तो लक्ष्य निश्चित, दिशा निश्चित होने के कारण से अर्थ की पकड बहुत सताएगी नहीं, ऐसा मुझे लगता है।

प्रश्न—जे कृष्णमूर्तिजी को आपने शारीरिक काम करते देखा है तो वे किस प्रकार के काम करते हैं—इस विषय में कृपया कुछ बतायें।

उत्तर—यह तो बहुत ही व्यक्तिगत सवाल है। मैंने उनको रसोई बनाते देखा है, बर्तन मलते देखा है, कपड़े धोते हैं यह सुना है, अपने जूतों को रोज पोलीश करते हैं यह सुना है। निरन्तर प्रवास में रहनेवाले व्यक्ति हैं, वे अपना सामान बांधना, खोलना, पेकिंग, अनपेकिंग किसी को करने नहीं देंगे। उनकी जो सोने की गद्दी होगी वह छः इंच से ज्यादा मोटी नहीं होनी चाहिए। लकड़ी का तख्ता होना चाहिए। गर्मी है तो केवल चटाई और उस पर चादर बिछाकर सो जाएँगे। तो अपना बिस्तर बनाना, अपना कमरा साफ करना, झाडू लगाना वहाँ से लेकर बाथरूम साफ करना यह सब काम करते हैं जो हम मध्यम वर्ग के लोग भी अपने लिए नहीं करते है। दो घण्टे रोज अपनी डायरी वह लिखते हैं। जो-जो घटनाएँ घटती हैं, जिन लोगों से मिलना होता है, दस-दस, १५-१५ व्यक्ति कमरे में बैठे हों और दो-दो घण्टे तक चर्चा हुई हो, उसके बाद जब कृष्णमूर्ति अपने कमरे में लौटेंगे तो जिस क्रम से चर्चा हुई उस क्रम से पूरा लिख जाएंगे। इतनी गजब की स्मरण-शक्ति विशद है। वह सब लिखते हैं। मुलाकातें देने का काम चलता है, सभाओं में बोलने का काम चलता है, जब मैंने देखा था। इधर पांच-सात वर्षों की जानकारी मुझे नहीं है।

अस्सी साल होने से पहले तक रोज पांच मील घूमते थे। और घूमना कैसा? उनकी चलने की जो गति है, उसमें अपने को दौड़ना पड़े ऐसी तेज गति। शारीरिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिश्रम से मेरा मतलब यह नहीं है कि वह किसी खेत में कुदाली लेकर काम करते हैं। लेकिन जिस सन्दर्भ से जीवन में रहते है वह कहा। यह तो अचानक लण्डन में थी और एक दिन मुझे मिलने को बुलाया। डेढ़–दो बजे कुछ दोपहर का उन्होंने बुलाया था। मैंने दरवाजा खटखटाया तो कृष्णमूर्ति गीले हाथ लेकर आते हैं और पूछते हैं कैसे आना हुआ तुम्हारा ? मैंने कहा आप भूल गए ? आपने ही मुझे Interview का यह दो बजे का समय दिया था ? कहते हैं My God ! मैं तो भूल ही गया था।

फिर बोले अच्छा मैं तुम को रसोई घर में interview दूं तो कोई हर्ज है ? मैंने कहा मुझ को तो क्या आपत्ति हो सकती है ? तो हम रसोई घर में गए, वहाँ वह बर्तन साफ कर रहे थे। कृष्णमूर्तिजी ने बर्तन साफ किए, धोए, मैंने पोंछकर रखे और हमारा जो मुलाकात का काम था वह भी हुआ।

एक दिन भोजन पर स्वीटझरलेन्ड से बुलाया था तो उन्हों ने खुद रसोई बनाई थी। रसोई बनाने में भी बड़े कुशल हैं। तो ऐसे अनेक उदाहरण है जब मैंने उनको देखा। शारीरश्रम और कोई किसी भी प्रकार का काम है, करने में उन्हें जरा भी संकोच नहीं है। श्रम बौद्धिक और शारीरिक दोनों प्रकार का करते हैं। आसन–प्राणायाम तो करते ही थे वह। अब करते है या नहीं, पता नहीं है लेकिन १९७१ तक उनको चालीस मिनट रोज के आसन, प्राणायाम करते हुए देखा। तो (चालीस) ४०–४५ मिनट आसन, प्राणायाम करना। घण्टे, दो घण्टे घूमने जाना, अलावा उसके इतना काम। इसलिए मैंने शायद उल्लेख किया होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पञ्चम प्रवचन

दि. २२-१-८२
प्रातः ६-७

मौन के क्षेत्र से वैखरी वाणी तक लौटने में श्रम पड़ता है, और समय भी लगता है। अपने आसपास जो विश्व है उस को तीन तरह से देखा जा सकता है और समझा जा सकता है। एक है व्यक्त-जिस के आकार है, वह आकार एक दूसरे से भिन्न है, स्वतंत्र है। आकार है, रंग है, रूप है, रस है, गंध है, वजन है। व्यक्तित्व धारण किया हुआ व्यक्त है, अपन उस को पदार्थ कहते हैं। पद का अर्थ स्पष्ट करने के लिए चैतन्य सघन होकर रूप धारण करता है उस को पदार्थ कहते है। तो मनुष्य को यह जो विश्व का व्यक्त विभाग है उसके साथ रहना है। हम देहधारी हैं, देह में उतर आए है और देह व्यक्त है। अन्य व्यक्तित्व धारण करनेवाले पदार्थों के साथ, प्राणियों के साथ हमें जीना है।

जिस को ध्यानावस्था में प्रवेश करना है, समाधिस्थ रहने की इच्छा है, उस को इस व्यक्त सृष्टि के साथ संयम का और संवाद का संबंध स्थापित करना पड़ता है। व्यक्त सृष्टि के साथ जो स्वच्छन्दता से रहेगा, स्वेच्छाचार या स्वैराचार करेगा, अनाचार या दुराचार तक पहुँचेगा उस व्यक्ति के लिए आंतरिक शांति, आंतरिक संतुलन, आंतरिक शुद्धि याने आंतरिक योगावस्था संभव नहीं है। जो यह मानते हैं कि व्यक्त सृष्टि के साथ हमारा चाहे जो संबंध हो वह गलत रास्ते पर है। किसी न किसी विशिष्ट क्रिया और प्रक्रिया से हम प्रभु को प्रसन्न कर लेंगे जो व्यक्त रूप से हमारे सामने खड़े हैं तो प्रभु का अपमान होगा, अनादर होगा। वनस्पति सृष्टि के साथ क्रूरता का व्यवहार होगा! प्राणियों के साथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपेक्षा, अनादर, क्रूरता का व्यवहार होगा। प्राणियों के साथ, पक्षियों के साथ और मनुष्यों के साथ स्वार्थ याने शोषण का प्रयत्न होगा तो लाख प्रयत्न कीजिए, लाखों वर्ष तक बैठिए जिस को सहज समाधि कहते है, जिस को भागवत अवस्था कहेंगे वह समाधि नाम का आयाम वह सहजावस्था नामका dimension इस व्यक्ति के लिए नहीं है। वह शक्तिसंपात करा ले, कुण्डलिनी जाग्रत करा ले, सिद्धियों का मन्त्रों का आश्रय ले, तन्त्रों का आश्रय ले, जीवन में जो ब्राह्मीदशा है, वह प्राप्त नहीं होगी। चित्त में क्षोभ नहीं, समत्व है और इन्द्रियों में निरंतर संतुलन है यह जो ब्राह्मीदशा, यह योगावस्था, चिर प्रसन्नता, सुख-दुःख के हर्ष-शोक के, जन्म मरण के बीच एक निरामय प्रशान्त, प्रसन्न अवस्था घटित नहीं होगी।

"प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।"

यह जो 'प्रसन्नचेतसता' है वह उस व्यक्ति के लिए नहीं है, जो व्यक्त का शोषण करता है, व्यक्त के साथ संघर्ष करता है, व्यक्त में अराजकता रखता है इसलिए मौन का अभ्यास करने की इच्छा रखनेवाले अपनी चेतना का आयाम बदलें।

मन से, बुद्धि से परे जो आयाम है, उसमें प्रवेश हो ऐसी इच्छा रखने वालों को व्यक्त के साथ स्वच्छन्द नहीं किन्तु संयम का आचरण करना चाहिए अनाचार, दुराचार नहीं, स्वेच्छाचार, स्वैराचार नहीं बल्कि संवादभरा संबंध स्थापित करना चाहिए। खूब रट लेना चाहिए ईशावास्य उपनिषद का पहला मंत्र—'ईशावास्यमिदम् सर्वम्।' फिर वह परमात्मा की सत्ता कुत्ते के रूप में है, बिल्ली के रूप में है, चिड़ियों के रूप में है, पौधे या पेड़ के रूप में हैं, मनुष्यों के रूप में है। लेकिन हम तो मनुष्य को भी मनुष्य के नाते देख नहीं पाते।

मनुष्य को देखने पर यह लगता है कि यह नौकर है, यह पत्नी है, यह पुत्र है, यह मेरा ग्राहक है, यह मेरा मालिक है—उपाधियों को देखते है, वर्णको देखते हैं। जैसे कोई कपडा पहना है और उसमें आदमी छिप जाय वैसे यह जो भूमिकाओं के प्रारब्धगत आवरण हैं उसमें हम मनुष्यों को पहचान नहीं पाते। उपाधियों का महत्त्व है, महलों का महत्त्व है। महलों में रहनेवाली व्यक्ति मनुष्यता में रहती हैं या नहीं? महलों में भी दरिद्री मनवाले बस सकते हैं।

ध्यानावस्था का अधिष्ठान अपने रोज के जीवन में, व्यक्त सृष्टि के साथ सम्बन्ध में डालिए। आसन डालना पड़ता है तब बैठा जाता है। नहीं तो मन चंचल है, दस घण्टे बैठते हैं मौन में, ध्यान में बैठते हैं, त्राटक करने जाते हैं और कहते हैं मन शांत नहीं होता है, मन स्थिर नहीं होता है, कैसे होगा स्थिर? व्यक्त के साथ सम्बन्ध में या तो लापरवाही है, बेपरवाही है, उपेक्षा है या अना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दर है। तो सुबह से रात तक के व्यवहार में सावधान बन जाइए। बौद्धों की आना पान और विपश्यना में यही सिखाया जाता है। mindfulness in activities. शारीरिक व्यवहार में लोगों को इसकी परवाह नहीं, इसकी तरफ ध्यान नहीं कि अपना शरीर किस प्रकार व्यवहार करता है ? दांत स्वच्छ करने हैं, शरीर स्वच्छ करना है, नहाना है, अपने कपडे धोने हैं, कपड़े पहनने हैं, अपना कमरा ठीक से रखना है, घर ठीक से रखना है, आंगन ठीक से बुहारना है इस तरफ भी ध्यान नहीं। भोजन करते हैं तो अन्न की तरफ ध्यान नहीं। क्या खा रहे हैं ? क्यों खा रहे हैं। कैसे खा रहे हैं ? सो रहे हैं तो अपना बिस्तर ठीक से रखें, स्वच्छ रखें, मेरूदंड सीधा रहे ऐसा बिस्तर बनाएँ ध्यान नहीं है। जैसे तैसे जी जाते हैं।

यह जो विश्व का व्यक्त नामका विभाग है, इसमें संघर्ष के बदले संवाद, स्वच्छन्द के बदले संयम, उपेक्षा के बदले आदर और सन्मान हो। नहीं तो प्रभु में श्रद्धा क्या हुई ? प्रभु क्या कोई abstract theory है ? वह तो जीवन है, साक्षात् नगद, यहाँ, अभी, वर्तमान में। पदार्थों के रूप से वह नटनागरका ही तो नर्तन हो रहा है। इसलिए अखिल ब्रह्मांड में जो प्रभु है, उनको नहीं पहचान पाते वह वैकुंठ की यात्रा क्या करें ? वैकुंठ को जानते हो ? जहाँ किसी भी प्रकार की कुण्ठा नहीं है, अवरोध नहीं है ऐसी चेतना की दशा।

तो एक हुआ व्यक्त। व्यक्त में ध्यानावस्था का अधिष्ठान, उसकी बुनियाद है समाधि। नींव के बिना मकान नहीं, पाये के बिना इमारत नहीं और हम लोग तो बिना नींव के इमारत बनाना चाहते हैं। व्यक्त के साथ जो संबंध है उसका तो एक महाकाव्य है, लेकिन उसमें उतरें कैसे ?

यह दिन के जो चौबीस घण्टे हैं, इसमें दिन के जो प्रहर है, अरुणोदय होने से पहले के ब्राह्मी मुहूर्त के साथ जो ३ या ढाई बजे से साढे पांच तक का समय है इसको कभी आपने आँख खोल के देखा है ? नीरव यामिनी, निशीथ निगूढ यामिनी शांत होने पर है और प्रातःकाल होने का समय है, अरूणोदय होने के पहले का समय है उससे पहले विश्व का जो स्वरूप है, उसमें जो एक अद्भुत शांति हैं, उसमें जो एक रज और तमसे मुक्त सत्त्वगुण कूट-कूटके भरा है। सात्त्विकता के रस से भरी-भरी यह जो वसुंधरा है उस समय उसको कभी देखा है ? सावधान होकर उसको देखो, कभी उसके साथ प्यार करो, ब्राह्मी मुहूर्त के साथ उठकर बैठो उस घड़ी के साथ, उस पहर के साथ। देखोगे कि ब्राह्मी मुहूर्त की जागृति आपके शरीर और मन में किस प्रकार की कांति लाती है ? करना कुछ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं, केवल जाग्रत होकर बैठना है तो जो रज, तम से मुक्त सत्त्वरस है वह आपकी काया को भर देगा।

कभी चंद्रमा की रात्रि, पूनम की रात्रि में कभी बैठे हो ? पूर्णिमा की रात्रि के चन्द्रसे ज्योत्स्ना, सुधा, अमृत झर रहा है शीतलता का। जीवनदायिनी सुधा है वह। कभी रातको बैठे हैं ? अन्धेरे के साथ मैत्री की है कभी ? बालसूर्य के या सूर्यास्त के पहले का जो सूर्य है उसके साथ कभी बैठे हैं ? केवल आनंद लूटने के लिए। यह न कहें कि हमें समय नहीं मिलता। हमें गपशप करने को कितना समय मिलता है ? निरर्थक बातों में हमें समय मिलता है, आलस में खोने के लिए समय मिलता है और यह जो वसुंधरा का, आकाश का. चंद्रका सम्बन्ध है, सूर्य की रश्मि में से प्रभु ही तो हमारी तरफ देखते हैं, चंद्र की ज्योत्स्ना में प्रभु की करुणा ही तो बरसती है : लेकिन उसके साथ हमारा संबंध नहीं है, इसलिए इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध बनता नहीं। अकारण कभी खेत में जाकर बैठे हैं ? अकारण कभी इस नीम के पेड़ के नीचे बैठे हैं ?

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।

वह जो कड़ुआ नीम है उसके तन में से जीवनदायिनी शीतलता निकलती है। नीम के पत्तों में से, निबोली में से उसकी जो हवा है, इतनी जीवनदायिनी हवा है लेकिन हमें पता ही नहीं। तुलसी के पौधे के पास, नीमके पेड़ के नीचे, कभी वट के और कभी अश्वत्थ के नीचे, कभी खेत में जब मौका मिले तब जाँय। पक्षियों का समुदाय कैसे उड़ता है ? वह कौन देखेगा ? कोयल कैसे बोलती है ? वह सुनाई पडती है लेकिन आपने देखा है कभी ?

खैर मित्रो ! व्यक्त के साथ का संबंध जीवन का एक महाकाव्य है। आपके रूखे-सूखे जीवनको भर देने की, तरबतर करने की शक्ति है यदि उसके साथ संयम का प्रेम भरा संबंध है। मेरे चित्त में बचपन में गधे के लिए कभी सन्मान नहीं रहता था बाकी सब प्राणियों से प्यार था लेकिन गर्दभ के साथ संबंध नहीं था, उसकी उपेक्षा होती। रास्ते में कभी दीखे तो मेरे चित्त में उपेक्षा रहे। यह मालूम रहता, उसकी वेदना रहती मगर वह गर्दभराज के साथ प्यार का संबंध बना विनोबाजी और दादा के कारण।

मेरी विद्यार्थी दशा थी, ऐसे ही मेरा पवनार जाना हुआ। एम. ए. में पढ़ती थी। धूप के दिन, ग्रीष्मऋतु मई महिना। दादा और विनोबा दुपहर बारह बजे घूमने निकले। विनोबा कहने लगे, चलो दादा। दादा बोले इस दुपहरी में घूमने निकले हो ? तो कहने लगे हम 'वैशाखनंदन' हैं। वैशाखनन्दन कहा जाता है गधे को। तो मैंने कहा वैशाखनन्दन ?

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब प्यार की दुनिया में भय तो होता ही नहीं। हमें कभी विनोबा का, दादा का, किसी का भय लगा ही नहीं। मैंने कहा यह क्या कह दिया आपने विनोबाजी ? वैशाखनन्दन तो गधे को कहते हैं। तो बोले हां, वह गधा कितना सुंदर होता हैं? उसके कान कभी देखे हैं? वह कैसे चलता है? बड़ा प्यारा, सबका बोझ ढोता है। तो मैं और दादा भी बोझ ढोते हैं। अब विमल के कान खड़े हो गए। दोनों मित्र घूमने निकले तो पवनार से सेवाग्राम गए और सेवाग्राम से पवनार वापस आए। दो–चार घण्टों में जो उनको बातचीत करनी थी वह की और इतना चलके आए। लेकिन यह ग्रीष्मऋतु के मध्यान्ह के बारे में मेरी अरुचि और गर्दभराज की जो उपेक्षा थी, वह निकल गई, चेतना शुद्ध हो गई। एक भी प्राणी के साथ उपेक्षा नहीं अंदर चित्त में सम्मान जागृत हुआ। चित्त में जो शूल था, उपेक्षा का कांटा जो मेरे उरमें घुसा हुआ था, जो चित्त को मलीन बना रहा था, वह निकल गया। खैर। यह बातें करनेका समय नहीं है।

व्यक्त के पीछे अव्यक्त छिपा हुआ है। व्यक्तके साथ संयमका संबंध हो, स्वच्छन्दका नहीं। यह ध्यानका विशिष्ट अंग है, यह अधिष्ठानभूत अंग है इसलिए मैंने बात कही। अव्यक्त क्या है? विचार अव्यक्त है, भावनाएँ अव्यक्त हैं, मूल्य अव्यक्त हैं और पदार्थों की शक्ति अव्यक्त है। सूर्य व्यक्त है और सर्य को किरणे भी व्यक्त हैं लेकिन उन किरणों में जो जीवन देनेकी शक्ति है, केवल ऊष्मा देनेको नहीं, प्रकाश देने की जो शक्ति है, आलोकमय रश्मियाँ हैं, यह जो आलोक देने की, प्रकाश देनेकी, जीवन देने की शक्ति है वह व्यक्त नहीं है।

धरतीमें जब रश्मि याँ किरण प्रवेश करती है तो आपके बोए हुए बीज को अंकुरित करती हैं। सूर्य के प्रकाश बिना यह नहीं बनता, उसको उष्णता के बिना यह नहीं बनता। सूर्य का प्यार उष्णता बनकर धरती में घुसता है और बीज को अंकुरित करता है। यह हमारे सामने बनता हुआ एक महाकाव्य हैं। हम जानते ही नहीं है उसको, देखते ही नहीं है। तो सूर्य के किरण व्यक्त है। शक्ति अव्यक्त है। परमात्माकी विभूति व्यक्त बनकर सामने खड़ा है और परमात्मा की शक्ति व्यक्त के पीछे ऊर्जा बनकर के प्रवाहित होती रहती है। चन्द्रकिरणों की शीतलता यह भी प्रभु की शक्ति है। चन्द्र में भरा अमृत और सूर्य में जो उष्णता भरी संजीवनी शक्ति है वह भी प्रभु की शक्ति है। तो मित्रो! शक्तियाँ अव्यक्त हैं। ऊर्जाएँ अव्यक्त हैं। विचार की शक्ति भी अव्यक्त है। शब्द व्यक्त है। अर्थ अव्यक्त। शब्द व्यक्त है। भाव अव्यक्त है। तो व्यक्त के साथ जिसने संबंध बांध लिया वह फिर अव्यक्त के साथ सम्बन्ध बांधता है। फिर माँ की परोसी हुई, पत्नी की परोसी हुई या बेटी की परोसी हुई थाली में केवल रोटी और चावल नहीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीखते, दाल और सब्जी नहीं दीखती, दिखता है परोसा हुआ प्यार! घर में कभो पत्नी या बेटी दुःखी है तो उसका दुःख परोसा हुआ दीखता है। जो मनुष्य सावधान हो उसको व्यक्त के पीछे अव्यक्त का परिचय होने लगता है। माँ का प्यार अव्यक्त है न? स्पर्श व्यक्त है, प्यार अव्यक्त है। तो अव्यक्त के साथ सम्बन्ध बांधने की संवेदनशीलता Sensitivity to get related to the invisible जागृत होती है। visible के पीछे, व्यक्त के पीछे अव्यक्त खड़ा है और व्यक्त से अव्यक्त का साम्राज्य बहुत बड़ा है। जिसने व्यक्त के साथ संयम–सम्बन्ध बांधा वह स्वच्छन्द से मुक्त हुआ।

स्वच्छन्द बन्धन है। स्वैराचार, स्वेच्छादार आप को जकड़ लेते हैं। अब आपने मन को, बुद्धि को मुक्त बना दिया है। मुक्ति भी कोई कल्पना नहीं है। वह जीवन की यथार्थता है। स्वच्छन्द से मुक्त होकर संयम के लावण्य से सजा-धजा चित्त और सजा–धजा शरीर अव्यक्त के साथ सम्बन्ध बांधता है। तो स्वर में छिपा हुआ भाव भी उसको दीखने लगता है। अव्यक्त बहुत महान् है। व्यक्त से बहुत बड़ा व्यापक है। आप व्यक्तिओं के चेहरे देखेंगे, वह नौकर है। वह मालिक है। वह आपका मित्र है। घर के परिवार के लोग हैं। अरे! आप भाग्यशाली है और आपके घर पर गाय है तो गाय की आँखो में देखो, घर रखे हुए कुत्ते की आँख में देखो। हमारे घर पर बचपन में दो गाएँ थीं। गायों की सेवा करना, दूध दोहना यह काम सब परिवार का। उसके लिए पिताजी नौकर नहीं रखने देते थे। गाय दोहना हमें आता है। गाय की सेवा की। तो वह गाय की आँखें जो होती हैं वे बहुत भावशील होती हैं। यदि आप दूसरे गाँव जाने लगें तो गाय की आँख में विरह की व्यथा आती है। आँसू आते हैं। देखा है कभी? घोड़े के साथ का सम्बन्ध, कभी उन आँखो में देखिए।

संवेदनशीलता ऐसे ही बढ़ती है। संवेदनशीलता ग्रंथों को पढ़ के नहीं बढ़ती है। जीवन के साथ सम्बन्ध रखने से संवेदनशीलता बढ़ती है। सूक्ष्मदर्शिता की शक्ति जितनी किसान में है उतनी शहर में रहनेवाले, यंत्रों के साथ दिन में दस घण्टे बितानेवालों के हृदय में कहां? वह काव्य कहाँ? उसके काव्य तो अनुप्रास, छंद, तुकबन्दी है। काव्य थोड़े है? काव्य का स्रोत–मूल झरना तो जीवन में है। सर्जकता का रहस्य जीवन में है–तो अव्यक्त के साथ आप का सम्बन्ध बनेगा। फिर आप व्यवहार कर रहे हैं। शरीर क्रिया कर रहा है। जबान आपकी बोल रही है। लेकिन आपकी संवेदनशीलता आप को दिखाएगी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कि इस क्रिया के पीछे आपका कौन-सा हेतु है? आप हम अपनी क्रिया का हेतु भी नहीं जानते।

बोल जाते हैं और कोई बताएगा कि ऐसा क्यों बोले ? तो आप कहेंगे कि मेरा यह अर्थ नहीं था। भले आदमी ! अर्थ नहीं था तो बोले क्यों ? नहीं मेरे मन में ऐसा भाव नहीं था। जरूर भाव रहा होगा, छिपा हुआ, छिपी हुई ईर्ष्या होगी, छिपा हुआ क्रोध होगा। कुछ–न–कुछ तो छिपा हुआ होगा, तब तो जबान से निकला। नहीं, हमारा हृदय तो बहुत शुद्ध है। जबान से हम बोल गए। असम्भव है। लेकिन हम इतने गाफिल हैं कि हमारी जबान के पीछे, बोलने के पीछे जो हेतु छिपे हुए हैं, जो भाव है, ईर्ष्या है, क्षुद्रता है, पामरता है, उसको हमने कभी देखा ही नहीं। अपना ही परिचय नहीं–आत्मसाक्षात्कार करने चले। अरे ! वाणी के पीछे का हेतु तो पहले देखो भले आदमी। आत्मा को देखने से पहले अपनी क्रिया के पीछे जो हेतु है, भाव है उनको तो देखो। जो सावधानता है कर्म के पीछे, उच्चार के पीछे का हेतु जो है उसे देखना। तो हेतु यानी विचार, वाणी–बोलना, करना यानी कर्म इन तीनों में संवाद बँध जाएगा।

व्यक्त के साथ सम्बन्ध साधने के बाद अव्यक्त के साथ संवाद–साधना है। छोड़ दीजिए ब्रह्मांड को, पिंड पर लौट आइए। अपने हर कर्म के पीछे क्या हेतु है? प्रेरक–तत्त्व कौनसा है? कौनसा परिबल काम कर रहा है? यह आप पहचानना सीखोगे–तभी बात बनेगी। नहीं तो आत्मछलना में पड़े रहोगे भैया ! चार नहीं दस घण्टे पूजा में रहोगे, पन्द्रह घण्टे मौन में बैठोगे और अंदर काम सता रहा है, क्रोध सता रहा है, ईर्ष्या सता रहो है। काम नाम का विकार अनंत द्वारों से प्रकट होता है। तो अपनेआप की छलना, प्रतारणा होगी कि मैं तो लोभमुक्त हो गया हूँ, क्रोध–मुक्त हो गया हूँ। आत्म–प्रतारणा, आत्म–छलना कभी न करना। उसके जैसा पाप नहीं है, क्योंकि आप अपने आपको ठगते रहेंगे तो दूसरा कोई आकर आपको मुक्त करेगा ? गुरु नहीं महागुरु, देवाधिदेव, महादेव, आदिनाथ भी आएँ तो क्या करेंगे ! जो व्यक्ति अपने को ही ठगने का धंधा दिन–रात करता है उसको दुनिया में कौन बचा पाएगा ? इसलिए अव्यक्त के साथ सम्बन्ध यानी अपने भीतर के अव्यक्त को आप पहले पहचानो ! उसको ग्रंथों के मारफत पहचानें ऐसा नहीं, मनोविज्ञान की पुस्तकें पढ़के नहीं, अपना रोज का व्यवहार देख करके। और कभी न मानना कि जो वाणी में व्यक्त हुआ जो आँखों में उतर आया वह भीतर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं है। आंखों में क्रोध उतर आया, तिरस्कार, घृणा, क्षुद्रता, पामरता, असहिष्णुता उतर आई और वाणी में निकली। कातिल वाणी—दूसरे का दिल चीरनेवाली, तोड़नेवाली। दूसरा बेचारा कमजोर हो तो उसके मन को चीर डालनेवाली। जबान के खूनी तो पता नहीं कितने हैं? जो मन में पहले हिंसा करता है उसकी आँख और वाणी में वह हिंसा उतर आती है। छुरी और गोली चलानेवाले तो स्थूल हैं। वे कितनों को मारेंगे? लेकिन हम बहुत ज्यादा लोगों को मारते हैं—अपनी जबान से, आँखों से और अपने स्पर्शसे।

इसलिए सावधान हो जाँय। ध्यानावस्था, समाधि अवस्था का वर्णन करूं तो आप मुग्ध बन सकते हैं, अभिभूत हो सकते हैं, भावावेश में आ सकते हैं। लेकिन उस वर्णन को सुनना और उसके नशे में आना, इसके पहले अपनी यथार्थता के ठोस आधार पर आगे बढ़ना चाहिए। यह हुआ अव्यक्त के साथ का साक्षात्कार। व्यक्त में संयम है और अव्यक्त में साक्षित्व है। व्यक्त के संयम और अव्यक्त में द्रष्टाभाव के साथ कर्ता और भोक्ताभाव रखकर के जीना पड़ेगा। क्योंकि देह मिली है उसको पिलाना है, खिलाना है—उदासीन होकर, उपेक्षा करके जैसे-तैसे खिलाओगे, पिलाओगे, जैसे-तैसे मकान में रहोगे। इसलिए तो प्रभुने सृष्टि नहीं बनाई? उपभोग हो लेकिन संयम पूर्वक हों, उपभोग की बीभत्सता न हो, संयम की रसिकता हो। यह यदि व्यक्त के साथ हुआ है तो अव्यक्त में अपने हेतुओंको पहचान करके अपने विचारों को, विकारों को पहचान कर आत्म-छलना के बन्धन से मुक्त बनें। आत्म-प्रतारणा के बन्धन से मुक्त बनें। वहाँ भी आ गया संयम। यह संयम बड़ी सुन्दर वस्तु है जो मध्यस्थ भाव में आपको लाके रखेगी। निर्ग्रंथ या केवली अवस्था मध्यस्थ भाव के बिना, संयम के बिना, संभव नहीं है।

मनुष्यको त्याग आकर्षित करता है, भोग आकर्षित करता है और मैं यहाँ आई हूँ संयम की बात करने। न मैं त्याग जानती हूँ, न मैं भोग जानती हूँ। यह त्याग करना होता क्या बला है? मुझे पता ही नहीं। जिसकी आवश्यकता नहीं, उसकी तरफ मन जाता ही नहीं। त्याग किस चीज का करना? फिर दूसरे का शोषण हो, उधर मन जाता ही नहीं है। मित्रो! जो पकड़ता है उसे छोड़ना पड़ता है। हमें पकड़ना ही नहीं मालूम कि वह चीज क्या होती है? यह 'ईशावास्य' जो सृष्टि है, उनमें से देहधारणा के लिए जितना आवश्यक है नम्रता से ले लिया। जा देते हैं उनके प्रति कृतज्ञ रहे। वह किसान के प्रति कृतज्ञ है, कारीगर के प्रति, बुनकर के प्रति। जो-जो काम करनेवाले हैं उनके प्रति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृतज्ञता है, श्रद्धा है। अपने से हो सकता है उतना श्रम किया है और चलें आगे।

यह त्याग क्या है? यह भोग क्या है? इसमें लिपटना क्या है? और "मैंने छोड़ा, मैंने त्याग किया" इस अहंकार के दल–दल के कीचड़ में फँसना भी क्या है! बड़ी अरसिकता है मित्रो! अरसिकता ही बीभत्सता है। साक्षित्व रहे। लोग तो अव्यक्त में जाकर भी महत्त्वाकांक्षा को लेकर बैठते हैं। प्रभु की शक्तियां दीखती है अव्यक्त में तब उन शक्तियों के पूजक बन जाते हैं। यह अव्यक्त के पीछे जो अनंत है, शक्तियों के पीछे जो सत्ता है, वहाँ तक पहुँचने की फुरसत नहीं। कुछ व्यक्त में अटकते हैं, भटकते हैं, कुछ अव्यक्त में शक्तियों में रुक जाते हैं। इतनी शक्ति दिखी, ऐसी अनुभूति आई, वह फलाना चक्र खुल गया। बस उसमें, शक्तियों में, अभिव्यक्ति में, उसको चमत्कार मान करके भटकनेवाले, फँस जानेवाले अनेक साधक हैं।

अव्यक्त में जितनी शक्तियाँ है उनको पकड़ने जाँय तो, देखनेके लिए चौरासी लाख ग्रन्थ लें तो भी अधूरे है। हमको शक्तियों को देखना है? शक्ति हमारे रास्ते में आ जाय तो देख लिया। लेकिन उनको देखने के लिए उनके पीछे दौड़ना है तो कल विद्युत् की शक्ति को भी पकड़ने दौड़ेंगे। आवश्यकता है उतनी शक्ति का उपयोग करें। यह नहीं कि जो शक्ति दीखे उसे पकड़ना, फिर उसकी मोनोपोली (Monopoly) लेना, उसको Catch करना। यह है आज व्यक्तियों के समाज की और राष्ट्र की मनोवृत्ति। तो फिर वह चन्द्रमा हो, Venus, Mars हो, किसको पकड़ें? उस पर साम्राज्य कैसे बनाएँ? यह उपभोगवादी; आसुरी मनोवृत्ति है इसलिए दैवी सम्पत्ति का जन्म नहीं होने देती। अपने मन में आसुरी वृत्तियों से मुक्त होना है, दैवी संपत्ति कहीं से लानी नहीं पड़ती वह तो हमारा स्वभाव है।

मैं यह कह रही थी कि अव्यक्त के प्रति साक्षित्व रहे। अव्यक्त शक्तियों को पहचानना साक्षात्कार करना, प्रणाम करना। वह शक्तियाँ अपने जीवन में व्यक्त हों तो भले हों, उनको प्रणाम करना, उनके साक्षी बनना। हरेक व्यक्ति में कोई–न–कोई अद्वितीय शक्ति होती है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की नकल नहीं है। माँ–बाप से बेटे, बेटियाँ भी अलग होते हैं, हर एक का अद्वितीयत्व है। आप में भी कोई–न–कोई गुण होगा, कोई–न–कोई शक्ति होगी। तो आप में वह शक्ति भी प्रकट होती है, किसी में बोलने की शक्ति है, किसी में गाने की, किसी में रसोई सुन्दर बनाने की, किसी में चित्र बनाने की, किसी में कुछ। हर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक व्यक्ति में शक्ति छिपी है, मगर दुर्भाग्य यह है कि आपके जीवन में जब वह शक्ति प्रकट होती है तब "वह प्रभु की शक्ति है" मानने के बदले 'मेरी शक्ति' मान के उसको पकड़ लिया, उसको चिपक गये। मुझ में यह शक्ति है उसमें यह नहीं है। अब दूसरों को आता है, मुझे नहीं आता तो दूसरों की ईर्ष्या की। भले आदमी! तुझे आता है, उसका घमंड किया? आता है तो भी दुर्भाग्य और नहीं आता है तो भी दुर्भाग्य!

जहाँ दुःख नहीं है वहाँ मन के कारण दुःख उपजाने में निपुण मनुष्य जैसा अभागा प्राणी मैंने नहीं देखा। परिस्थिति में दुःख हो इस से अनंतगुना दुःख यह मनुष्य पैदा करता है। अपने में कुछ गुण है, शक्ति है तो आनन्द मानो, कुछ उपयोग करो। मगर ऐसा नहीं होता। मेरी शक्ति-मेरी शक्ति उसको प्रदर्शन करना चाहते हैं। अभिव्यक्ति सहज होती है, प्रदर्शन बीभत्सता में ले जाता है। जान बूझकर मौका पैदा करके, आग्रहपूर्वक अभिनिवेश करके, मुझे आता है वह दिखाना है। तो भाई! आता है तो हो जायगा व्यक्त, उसकी क्या चिन्ता है? जो नहीं है उसकी ईर्ष्या, क्षुद्र बनाती है। आता है उसका घमंड फिर से क्षुद्र बना देता है। यह मनुष्य अपने आप को बांधने में इतना कुशल है और फिर कहता है गुरु को ढूँढ़ो, वह मुक्त करेंगे। एक नहीं दस गुरु मिले तो भी जिनको बन्धन प्रिय है उनका एक बन्धन काटो तो भला आदमी दूसरा पैदा कर लेगा। सुबह उसका बंधन काटो तो रात तक दूसरा बंधन पैदा कर लेंगे और रात को सब बंधन काट दो तो सुबह उठने से पहले दस पैदा कर लेंगे। बन्धनों का ताना-बाना दिनभर मन से बुनते रहते हैं और गुरु की खोज में निकले हैं कि कोई मुझे मुक्त कर दें। मित्रो!

'उद्धरेद् आत्मनात्मानम्'

अपना उद्धार खुद ही कर सकता है, क्योंकि बन्धन है ही नहीं, बन्धनों का भ्रम है, उसको हटाना है। बाकी मुक्ति एक छटांक कहीं से लानी थोड़ी है? मुक्त ही हैं आप। तो अव्यक्त के साथ साक्षित्व का सम्बन्ध आता है। यहाँ मौन द्वारा पहुँचा जाता है।

इसके आगे अनन्त की सत्ता है। अनंत की सत्ता में कर्ताभाव, भोक्ताभाव मदद नहीं करता है। साक्षीत्व या मध्यस्थभाव भी मदद नहीं देता। तो कर्ता, भोक्ताभाव व्यक्त में छोड़ दिए थे। द्रष्टा और साक्षीभाव अव्यक्त में छोड़ दिये। अनंत के सामने केवल प्रणति और शरणागति काम देती है। यहाँ समर्पण काम देता है। व्यक्त में पुरुषार्थ करें, अव्यक्त में साक्षी रहें और अनंत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में समर्पित हो जाँय। यहाँ समर्पण का काव्य है। यहाँ प्यार का सम्बन्ध है। इसलिए मैं ने कहा था कि :—

यहाँ सर देकर होते हैं सौदे,
आशिकी इतनी सस्ती नहीं है।
यहाँ दम दम पे होती है पूजा,
सिर झुकाने की फुरसत नहीं है ॥ १ ॥

जिनकी आँखो में श्याम समाये,
वह रहते हैं जग से निराले।
एक बार जो पी लेता है,
उम्रभर फिर उतरती नहीं है ॥ २ ॥

यह हमारे ज्ञानेश्वर बड़े रसिक ! कहते हैं—

"सकळां गतिंचो गति ते हे शरणागति।"

सब गतियों में तीव्रतम, उच्चतम, गति कौन-सी है रे ? तो कहते हैं शरणागति के जैसी गति कहीं नहीं। अपनी सब क्रियाओं की और कर्ता—भोक्ताभाव तथा साक्षीभाव की यहाँ आहुति चढ़ानी पड़ती है, कीमत चुकानी पड़ती है भाई! लेकिन हम में प्यार करने को हिंमत नहीं है, तो समर्पित कहाँ से होंगे ? भले न न वह परमात्मा हो। लेकिन परमात्मा तो हमारे मुनीम हैं, हम को जब जो चाहिए वह लाकर दें तो वह परमात्मा है। और नहीं दे तो ? वह परमात्मा थोड़े ही है ? हम तो परमात्मा को मुनीम समझते हैं। और वह न दिया तो कहेंगे कि अवकृपा हो गई है, रूठ गया है। अरे भाई ! परमात्मा कमी रूठना जाने तो वह परमात्मा होंगे ?

अनंत के साथ सम्बन्ध यदि हो सकता है तो केवल समर्पण भाव में हो सकता है। वहाँ प्रपत्ति या शरणागति से ही सम्बन्ध बनता है। प्रपत्ति, शरणागति यानी जहाँ मेरे करने से कुछ नहीं होगा, प्रभु ! आप की जो मरजी है वह होने दो। जो होना है सो हो। इस प्रकार आज मैंने व्यक्त, अव्यक्त और अनंत जीवन का जो स्वरूप है, उसके साथ हम कैसे सम्बन्धित हो सकते हैं यह बतलाया।

जो व्यक्ति समाधिस्थ है ध्यानावस्थित है, वह उसे देखता है।

"ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यम् योगिनः"

तो योगी के चित्त में अन्दर में, गहराई में, यह प्रणति का भाव सदा हरा—भरा रहता है। स्वधर्म का पालन करेगा व्यक्त में—यथाशक्ति, यथामति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो होता है घटनाओं में, सुख-दुःख, मान-अपमान, हर्ष-शोक, जन्म-मरण उसका साक्षी बनकर देखेगा। प्रतिक्रिया के बिना जो देखता है, उसमें साक्षीत्व है। वह देखेगा लेकिन अन्दर में गहराई में उसका समर्पित चित्त है, समर्पित चेतस् है। वह प्रभु के प्रति प्रणत है कि मुझे जो करना था सो किया, अब जो फल आना है सो आए। प्रणति, प्रपत्ति, शरणागति के बिना निश्चिन्तता, निर्भयता सम्भव नहीं है। वह निर्भय है, वह अभय है, वह निश्चिन्त है। वह जानता है प्रभु की प्रतिज्ञा :—

अनन्याश्चिन्तयन्तो माम्, ये जनाः पर्युपासते।
तेषाम् नित्याभियुक्तानाम्, योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अनन्य चिन्तन जो मेरा करता है। कब? स्वधर्म-पालन करते हुए, क्रिया करते हुए, कर्म करते हुए। सम्बन्धों में जीते हुए जिस का अनुसंधान मेरी सत्ता के साथ छूटता नहीं है वह अनन्य चिन्तक है। यह नहीं कि सब काम-धाम छोड़ दिया और बैठ गए? नहीं, क्रिया भी नहीं और निष्क्रियता भी नहीं। सावधान कर्म है, जो सामने आया। अंदर समर्पणभाव है, मन-बुद्धि में सावधानता है। इन्द्रियों में व्यवहार की तत्परता है, यह जीवन जीने की कला है। 'योगः कर्मसु कौशलम्।' और यह योगी दशा, यह योगावस्था मनुष्य जीवन का प्रयोजन है 'तस्मात् योगी भवार्जुन।' इसलिए आपके पास ध्यान की या समाधि की बात रखते है। ध्यानावस्था को, समाधि अवस्था को mysterious मत बनाइए, रहस्यमय मत बनाइए। यह शुद्ध विज्ञान है, इसलिए आंतरिक प्रपत्ति, मन, बुद्धि की सावधानता और इन्द्रियों की तत्परता यह तीन वस्तु जहाँ दीखें वहाँ मान लेना कि यह व्यक्ति समाधि नाम के आयाम में रहता है।

स्थितप्रज्ञ लक्षण के श्लोक जो गाते हैं उसकी पहचान इन तीन लक्षणों से हो सकती है, और ऐसी समाधिस्थ व्यक्ति कर्म में रहेगी, समाज में रहेगी, घूमेगी, नहीं घूमेगी—यह उसके देह के प्रारब्ध के साथ जुड़ा हुआ है। किसी रमण महर्षि के भाग्य में था कि वह तिरूवन्न् मलाई में बैठ सकें और किसी महात्मा गांधी के, विनोबा के भाग्य में था कि सारा देश घूमना पड़ा। श्रीरामकृष्ण के भाग्य में था कि दक्षिणेश्वर छोड़ना नहीं पड़ा और किसी गरीब बेचारे विवेकानन्द का नसीब था कि सारी दुनियां में परिव्रज्या करते-करते उनका देहांत हुआ। यह तो देहगत प्रारब्ध है। देह घूमता है, काया घूमती है वह आदमी अंदर घूमता नहीं है वह तो बैठा हुआ है। आसन पर बैठा हुआ है, आत्मा में प्रतिष्ठित है। इसलिए

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

घूमता है, नहीं घूमता है, बोलता हैं, नहीं बोलता है यह criteria, यह norms मत लगाइए आत्मानुभवी की परीक्षा में, उसको देखना, अच्छी तरह से निरखना, परखना कि अन्दर समर्पित भाव है, निश्चिन्तता है कि चिन्ताग्रस्त है? क्रियाओं का साक्षित्व है कि क्रियाग्रस्त मानस है? सावधानता है कि गैर सावधान गाफिल है? तत्परता है कि प्रमाद है? यह देख लीजिए। यह criteria, यह कुछ मूल्य हैं, कसौटियाँ है जो आप के हाथ में भेंट देकर हम जा रहे हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठ प्रवचन

दिनांक २२-१-८२
प्रातः १० से ११

सर्वोदय एवं गाँधी विचारधारा के संगठनों के या संस्थाओं के कार्यकर्ता या सदस्य जो यहाँ बैठे होंगे शिबिरार्थी बनकर या अतिथि बनकर उन सब से कुछ मूलभूत बातें आज के प्रभात में कहना चाहती हूँ। आज देश की जो परिस्थिति है, उस परिस्थिति में जो चीजें खतरे में पड़ी है उनमें एक है सब का उदय, सब के हितों का विकास। एक-दूसरे के सहयोग से, शांति रखते हुए, सभ्य तरीकों से। राष्ट्र में आज यह आकांक्षा नहीं है, श्रद्धा नहीं है कि सब का उदय साथ में एक-दूसरे के सहयोग से, जो हित का विरोध आज की व्यवस्था में है, उसको मिटाते हुए—किया जा सकता है। इस श्रद्धा का पुनरुज्जीवन करना, इस श्रद्धा को फिर से जगाना और राष्ट्र के कोने-कोने में स्पंदित कर देना यह आज की परिस्थिति में बहुत बड़ी आवश्यक्ता है।

शब्द है 'सर्वोदय' लेकिन इस शब्द की पवित्रता, इस की गहनता या गंभीरता के पीछे 'सर्वजनहिताय, सर्वजनसुखाय' जीवन होना चाहिए। समाज में आवश्यकता नहीं है किं और एक वर्ग बन जाय, जिनके हितों में संघर्ष हो, कोई आवश्यकता नहीं है कि एक-दूसरे का शोषण करने से ही हम जी सकें। यह जो भ्रम है कि संघर्ष के बिना या शोषण के बिना हम जी नहीं पाएँगे, इस भ्रम को मिटाना होगा और राष्ट्रमानस को निर्भ्रान्त बनाना होगा। सर्वोदय का दर्शन महात्मा गांधीने दिया था। वे केवल राजनैतिक नेता नहीं थे, बल्कि भारतवर्ष की भागवत-परंपरा में, सन्तों की और भक्तों की परंपरा में एक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उज्ज्वल भक्तरत्न थे, जीवन-साधक थे। जीवन-साधकों के मेरुमणि थे। यह जो जीवन-दर्शन बापू लाए जैसे कोई गंगाजी का जल रामेश्वर में चढ़ाने ले जाता है वैसे इंग्लैंड में अभ्यास करने के बाद दक्षिण अफ्रिका में परिस्थिति का अध्ययन करने के बाद भारतवर्ष में अपने राजनैतिक गुरू गोखलेजी की सलाह से एक वर्ष घूमने के बाद और अपने आध्यात्मिक मार्गदर्शक श्रीमद् राजचन्द्र या रायचन्दभाई के साथ बहत्तर मूलभूत प्रश्नों की चर्चा करने के बाद 'सत्याग्रह' और 'सर्वोदय' यह दो शब्द-रत्न बापू को मिले। उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम दिया खादी ग्रामोद्योगों का कृषि-केन्द्रित औद्योगीकरण, कृषि और कृषक का सन्मान, खेती पर आधारित अर्थतन्त्र, बुनियादी तालीम, स्त्री-पुरुषों की समता, अस्पृश्यता-निवारण इत्यादि जो कार्यक्रम दिए ऐसा सर्वाङ्ग सम्पूर्ण जीवन-दर्शन देखने में नहीं आएगा।

हमें सर्वोदयी समाज चाहिए। 'सर्वोदय' जैसा क्रान्तिकारी जीवन दर्शन और नहीं है यह श्रद्धा यदि आज हम लोगों के चित्त में नहीं होगी, तो सर्वोदय का जो काम करते हैं, ग्रामदान, भूदान का, खादी का, ग्रामोद्योगों का, गिरिजनसेवा, हरिजनसेवा, बुनियादी तालीम का जो भी करते हैं उसमें तेजस्विता नहीं आएगी। जो बापू का नाम श्रद्धापूर्वक लेते हैं दिखावट के लिए नहीं, पाखंड के लिए नहीं उन सब के लिए एक चुनौती खड़ी है कि यह जो जीवन-दर्शन खतरे में पड़ा है, उसको हम खतरे से बाहर निकालेंगे। हमें समाज सर्वोदयी चाहिए, यह मांग किस प्रकार जाग्रत होगी? इस सर्वोदय का अर्थ लोग किस प्रकार समझेंगे? इस का सर्वोदय मंडल, खादी-प्रेमी, गांधी-प्रेमी लोग गंभीरता से विचार करें। अलख जगाने का काम है। यह न कहिए कि सन् छयालीस के बाद इतना तो हुआ है! जो नहीं हुआ हो तो करने में कहीं-न-कहीं अपनी भूल रही होगी। इसको ध्यान में रखते हुए श्रीगणेश करना पड़ेगा। समाज सर्वोदयी हो यह एक ऐसी क्रान्तिकारी कल्पना है जो आप को पूंजीवाद पर खड़े लोकतांत्रिक देशों में देखने को या सुनने को नहीं मिलती।

अमेरिका में जो लोकतन्त्र खड़ा है वह पूंजीवाद के आधार पर खड़ा है! इंग्लैंड में लोकतन्त्र है या अन्य लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ आज कहीं फुटकर देशों में खड़ी होंगी या चलती होंगी उसका आधार पूंजीवाद है। वह है धनाधारित लोकतन्त्र और धन के संरक्षण के लिए शस्त्र चाहिए इसलिए शस्त्राधारित लोकतन्त्र। धन का केन्द्रीकरण बडे पैमाने पर यंत्रों के द्वारा, उद्योग चलने से ही हो सकता है। इस लिये यह केन्द्रित उद्योगीकरण तो धनाधारित, यंत्राधारित, शस्त्राधारित, सत्ताधारित लोकतन्त्र है जिन की चर्चा आप के छोटे-से नगर में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बैठकर मुझे करनी भी नहीं है; समय भी नहीं है लेकिन वहाँ ऐसा कोई समाज बन सकता है जिस में उत्पादक वर्ग जो होगा उस के हाथ में उत्पादन के साधन होंगे। उत्पादक और उपभोक्ता, producer & consumer इन के बीच दलालों की संख्या कम से कम होगी।

यन्त्र का उपयोग होगा लेकिन मनुष्यबल और पशुबल के सहायक रूप में। मनुष्यबल और पशुबल के पूरक यंत्र बनेंगे। यंत्रविज्ञान गाँव में जाएगा, लोगों के जीवन में जाएगा। यंत्र-विज्ञान, अणु-विज्ञान, सौर-विज्ञान जितनी ऊर्जाएँ हैं, उनका उपयोग होगा। इसलिए इनको विकेन्द्रित करना कहा। मनुष्यबल का और पशुबल का अपमान न हों। मनुष्य के जीवन में पशु, प्राणी, वनस्पतियों का समावेश है इसलिए मनुष्याधारित उत्पादन, श्रमाधारित उत्पादन। जिस उत्पादन में मनुष्य और पशु साथी हों। जंगल और जंगल की वनस्पतियाँ, वृक्ष पेड़ ये साथीदार बनें। भोग्य कुछ भी नहीं, सब साथीदार हैं, सहयोगी हैं। यह बापू का जीवन-दर्शन रख रही हूँ। किसी मन्दिर में, मठ में बैठनेवाले वेदांती का यह अद्वैत दर्शन नहीं हैं, यह तो संपूर्ण जीवन को अपनी प्रज्ञा के आश्लेष में लेनेवाले, जीवन की एकता का उद्घोष करनेवाले महात्मा गांधी का जीवन-दर्शन है। उन से आगे कोई वेदांत या अद्वैत बढ़ा नहीं है।

तो मैंने कहा कि आज 'सर्वोदय का जीवन-दर्शन' खतरे में है। हम विचार करें अमरेली जिले के सर्वोदय-मंडल के सदस्य, 'समाज-कल्याण-मंडल' वाले, अन्य भगवत् प्रेमी। सर्वोदय का जीवन-दर्शन या जीवन-दृष्टि बचेगी नहीं तो इस देश में अब धर्म को, अध्यात्म को बचने के लिए दूसरा कोई आधार नहीं मिलेगा।

साम्यवाद का जो बौद्धिक आक्रमण है उस आक्रमण के सामने यदि कुछ ठहर सकता है जो गांधी, विनोबा का यह वैज्ञानिक जीवन-दर्शन, सर्वोदय ही ठहर सकेगा। यह मुकाबला आज होने में है, हो रहा है और होकर रहेगा। आजादी के बाद यह देश सर्वोदय के जीवन-दर्शन से दूर चला गया है। बहुत दूर भटक गया है, इस में राज्यकर्ता, राजनैतिक नेता, राजनैतिक पक्ष, उद्योगी, व्यापारी, हम रचनात्मक कार्यक्रमवाले, गांधीवादी कहलानेवाले, पक्षमुक्त, समाज-सेवक और अपने आपको धार्मिक, अध्यात्मनिष्ठ माननेवाले, पुरोहित, धर्मगुरू और अध्यात्मगुरू सब समान रूप से भागीदार हैं। यह देश भटक गया है। उस भटकने में और भटकाने में इस जिम्मेवारी को हम समझ लें और सर्वोदय जीवन दर्शन के ज्यादा नहीं, मूलभूत दो-चार-पांच सिद्धांतों को पकड़ें। और विचार करें कि हमारे तालुके में, हमारे जिले में यह जो वैज्ञानिक जीवन-दर्शन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, क्रान्त-जीवन दर्शन है उसे किस प्रकार स्वीकारें । पूंजीवाद तो क्या, तथा-कथित लोकतन्त्र तो क्या लेकिन समाजवाद और साम्यवाद का उद्घोष करनेवाले देशो में भी इतना क्रान्तिकारी जीवन-दर्शन नहीं है । वहाँ व्यक्तिजीवन की स्वाधीनता, उत्पादन की स्वाधीनता, मनुष्य की मनुष्यता का और उनकी सृजन-शीलता का, उसकी सृजन शक्तियों का सम्मान नहीं है ।

यन्त्र की शक्तियों का सम्मान करने में आजका युग लगा हुआ है । यन्त्र-विज्ञान में अपनी बहादुरी और पौरुष समझने में पड़ा है और अपनी स्वयं की जो श्रमशक्ति है वह उपेक्षित रहती है । पशु की शक्ति उपेक्षित है, उसको केवल मार कर खाना ही अब सीख रहे हैं और सिखा रहे हैं । उसका सहयोग नहीं ले पा रहे हैं । उत्पादन में उसको साथीदार नहीं बना पा रहे हैं । यह आधुनिक मनुष्य की हार है । उसको वनस्पतिसृष्टि के साथ सहयोग, संवाद, सख्य मालूम नहीं, भूल गया है वह । वह कला भूल गया है, इतना स्वकेन्द्रित होता जा रहा है । मानो सारी-की-सारी सृष्टि, वसुन्धरा भोग्या है । और मनुष्य उस का उपभोग करनेवाला है । सृष्टि का, वसुंधरा का; पानी का, आकाश का, जल का, प्राणियों का, वनस्पतियों का. मनुष्यों का भी उपभोग ! फिर यह उपभोग की लालसा और उपभोग लम्पटता रोके रुकती नहीं है, वह बढती चली जाती है और अपना समर्थन खोजती है, इसलिए एक विचार करने की बात है कि क्रान्त जीवन दर्शन जो सर्वोदय का वैज्ञानिक दर्शन है, जिस में केवल महात्मा गांधी नहीं, जे. सी. कुमारप्पा भारतन कुमारप्पा जे. बी. कृपलाणी, आर्यं नायकमजी कितने नाम लें आपके सामने ! जो क्रान्तिकारी व्यक्ति है उन्होने इसमें "The ultra modern and the latest revolutioner phylosophy of life." देख लिया वह न देख पाते तो जयप्रकाश शायद विनोबा का साथ नहीं दे पाते जितना समय उन्होने दिया ।

"राजनीति के और धर्म के दिन लद चुके हैं और अध्यात्म विज्ञान के दिन आए हैं" यह निवेदन या कबूलात वह नहीं करते । आज चुनौती है सर्वोदय जीवन दर्शन को ।

संस्थाओं को और आंदोलनों को खतरे आएँगे भी, उठाएँगे भो, संस्थाए खतम भी होगी, नई भी बनेगी, परिप्रेक्ष्य बदलेंगे संदर्भ बदलेंगे उसमें तो कोई बहुत घबराने की बात नहीं है । ऐसी कितनी संथाएँ बरबाद भी होगी उनके मकान टूटे भी होंगे उनके खण्डहरों में से फिर नये खड़े होंगे, उसकी चिन्ता नहीं लेकिन जीवनदर्शन की चिन्ता है । तो समाज हो सर्वोदयी और सर्वोदयी समाज बनाने के लिए व्यक्ति हो साम्ययोगी ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१९५७ में मैं पदयात्रा कर रही थी केरल में। वहाँ हमारे अजीज मित्र नम्बूद्रीपाद की सरकार थी और कृष्ण अय्यर वहाँ के कानून मन्त्री थे जो आगे चलकर Supreme Court में गए। नम्बूद्रीपाद के पास बड़ी अच्छी टीम थी और उनको लगता था कि बस अब चुनाव में जीतकर के साम्यवादी सरकार बनी हो समझो। केरल में क्रान्तिकारी भूमि का कानून कर देंगे। विनोबाजी जैसा चाहते है वैसा radical lesiglation of land कर देंगे। पता नहीं, केरल को हम क्या बना देंगे! और मंत्री-मंडल बनने के बाद जब राज्य-व्यवस्था में चलने लगे तो न तो वह क्रान्तिकारी कानून बना पाए भूमि का न और कुछ ही कर पाये। क्यों कि जिस चौखट का स्वीकार कर के चलना पड़ा उसमें buerocracy की मदद के बिना, व्यापारियों की, उद्योगपतियों की मदद के बिना वह उनका legislation नहीं हो पा रहा था। कर नहीं पा रहे थे। बड़े व्यक्ति थे। उन्हीं दिनों दादा धर्माधिकारी आ पहुँचे। दादा ने कहा, अरे! नम्बूद्रीपाद! तेरे साम्यवादी पक्ष के साथीदारों को तू बुला ले। मैं तुम लोगों के साम्यवाद पर जरा वर्ग लूंगा। आप जानते हैं दादा अभिजात शिक्षक हैं। याद है कि पांच दिन तक comparative study of communism & gandhism पर दादा ने शिक्षण दिया। पहले दिन उन्होंने पहला वाक्य कहा कि देखो साम्यवाद यदि भारत की तरफ आने के लिए निकलेगा तो भारत तक पहुँचते वह साम्ययोग बन जायगा। वह वाद नहीं रहेगा।

मैं जो कह रही हूँ समाज सर्वोदयी और व्यक्ति साम्ययोगी। इस साम्ययोगी व्यक्तित्व का अर्थ और साम्ययोगी व्यक्ति बनने के लिए ब्राह्मीदशा में या ध्यानावस्था में स्थिर रहने के लिए क्या करना पड़ता है इस की चर्चा तीन दिन से प्रातःकाल की सभा में करते रहे हैं।

> "परवश जानि हँस्यो इन इन्द्रिन,
> निजवश है न हँसैहौं।
> मन मधुपहि पन करि तुलसी,
> रघुपति पद कमल बसैहो ॥"

तुलसीदास गाते हैं कि मेरी इन्द्रियाँ मुझे परवश देख कर हँसती हैं, मैं इन्द्रियों का गुलाम बनकर नाचता हूँ

> 'अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मेरा यह जो नाचना है और परवश होना है यह देखकर मेरी इन्द्रियाँ मुझ पर हँस रहीं है और जब इन्द्रियों ने देखा कि मैं स्वाधीन हो गया, रघुपति पद कमल में बसने का मेरे मनने जिस दिन प्रण कर लिया और इन्द्रियाँ मेरे स्वाधीन हो गईं, तब इनका नाचना बन्द हुआ। तो साम्ययोगी व्यक्ति कैसी होगी? इन्द्रियाँ उसके स्वाधीन है। दमन कर के, पीड़न कर के नहीं इन्द्रियों से मैत्री कर के, उनको समझाकर; उनका सहयोग लें। उपभोग परायणता में स्वच्छन्दी बनी हुई इन्द्रियाँ भी साथ नहीं देतीं और अकारण दमन, पीडन करके शरीर–पीड़न या आत्म–पीड़न करके कुचली हुई इन्द्रियाँ भी साथ नहीं देती। न इन्द्रियों को कुचलना हैं, न उपभोग से उन को लम्पट बनाना है यह एक मध्यम मार्ग है जीवन का, जो भारतीय संस्कृति का हार्द है, उसकी आत्मा है। तो साम्ययोगी व्यक्ति की इन्द्रियाँ स्वाधीन होने के कारण आवश्यकतायें उसकी बढ़ेंगी नहीं।

आज आवश्यकताओं को बढ़ाना, शारीरिक सुखकी सामग्री जुटाना यह प्रगति का एकमेव लक्षण हो गया। आवश्यकताओं को बढ़ाते चलो, आवश्यकताओं की पूर्ति करने का सामान बढाते चलो यानी परिग्रह को बढ़ाओ यह उल्टी दिशा है। परिग्रह बढ़ाने के लिए शोषण करना पड़े तो करो, फिर परिग्रह कोई लूट के न ले जाय, चुरा के न ले जाय इसलिए संरक्षण के लिए शस्त्रों का सहारा लो, यह एक दुष्ट चक्र है, जिसमें आज आज़ादी के बाद यह देश पड़ा है। साम्ययोगी व्यक्ति की इन्द्रियाँ स्वाधीन होने से और वह संतोषप्रेमी व्यक्ति होने के कारण आवश्यकताएँ मर्यादित रहेंगी। आवश्यकताओं में लक्ष्मण रेखा रहेगी।

इन्द्रियाँ स्वाधीन हैं, मन और वाणी संयम में है और मनुष्य की प्रतिष्ठा हैं। मनुष्य मनुष्य है इसलिए पवित्र है। ऐसे सम्बन्धों से मनुष्यों के साथ मैत्री का भाव है। "मैत्री, मुदिता, करुणा" यह सब एक साथ आ जाती है तो साम्ययोगी व्यक्ति के मन की यह दशा रहेगी और अंदर में परमात्मा है इस श्रद्धा के कारण चिन्ता को प्रभु के चरणों में चढ़ाकर निश्चिंत–निर्भय रहेंगे। तो समाज बनेगा सर्वोदयी, व्यक्ति होगा साम्ययोगी और व्यवस्था होगी लोकतांत्रिक।

आज व्यक्ति को साम्ययोगी बनने का मौका नहीं है। जितने राष्ट्रीय संयोजन चलते हैं और योजनाएँ बनती हैं यह भोग को बढ़ानेवाली हैं। केवल भौतिकवाद को नहीं भोगवाद को बढानेवाली योजनाएँ है, इसमें से हित-विरोध पैदा होनेवाला है और फिर जनता में हित–विरोध पैदा न हों, वर्ग न बनें इसलिए उत्पादन के साधन धीरे–धीरे सरकार के हाथ में चले जाँय इस नीति से जाते हैं फिर राजनैतिक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विरोध भी सहन नहीं होता है तो एक पक्ष की सरकार रहे यह एक नीति जीवन पद्धतिमें से आती है।

राजनैतिक आकांक्षाएँ, राजनैनिक व्यवस्थाएँ, जीवनशैली और जीवन पद्धति में से पैदा होती हैं। आज लोकतन्त्र खतरे में है, लोकतांत्रिक जीवन पद्धति में भरोसा नहीं है, क्योंकि लोक पर भरोसा नहीं है। लोकों में हित-विरोध न हों इसलिए उत्पादन के साधन सरकार के हाथ में। शिक्षण सरकार के हाथ में है। यह जो आज आवश्यकता पैदा हो गई है National Intigration के नाम पर, राष्ट्रीय एकता को बचाने के नाम पर, उसका यह कारण है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था साम्ययोगी नागरिकों के बिना ठहर नहीं सकती क्यों कि लोकतन्त्र में सत्ता नागरिक के हाथमें संविधान दे देता है। सार्वभौम सत्ता supreme power आज जनता को पता ही नहीं है कि power का उपयोग कैसे करना ? उनको यही मालूम नहीं है कि अपने अधिकार क्या ? अपनी जिम्मेदारी क्या है ? जैसे बच्चों के हाथों में कीमती से कीमती रत्न हों, वैसे आज भारतीय जनता के हाथमें संवैधानिक अधिकार बन गए और संवैधानिक जिम्मेवारियाँ बन गई है। तो साम्ययोगी व्यक्ति जागृत होगी, जिम्मेवार नागरिक होगी, अधिकारों का भान होगा, जिम्मेवारियों का ख्याल होगा और अपनी जिम्मेवारियाँ, किसी का चाबुक न चले, तो भी पूरी करने की दानत होगी।

आज हमारी क्या माँग है ? कि हम अपनी जिम्मेवारियाँ पूरी तब करेंगे जब कोई शासन का चाबुक चले। रिश्वत लेते–देते पकड़े जाने की चिंता है न ? वह नहीं पकडे तो ? तो रिश्वत लेने–देने पर भी हम सभ्य नागरिक है, फिर हम धार्मिक है, आध्यात्मिक है। शोषण करते हुए हम पकडे जाँय तो ? यह कानून से पकडे जाय, कानून का चाबूक चलें तो हम चोरी नहीं करेंगे, मुफ्तखोरो नहीं करेंगे। आज का हमारा मानस बडा दयनीय हैं। मित्रो ! भारतीयों के लिए शोभादायक नहीं, ऐसा हमारा मानस बन गया है। जहाँ–जहाँ चाबूक चलेगा वहाँ ठिकाने पर रहेगा। ऐसे ठिकाने पर रहना और डरसे सभ्य व्यवहार करना यह नैतिकता का लक्षण है ? नैतिकता में 'अथ आत्मानुशासनम्" अपने भीतर से अपना ही शासन खुद व्यक्ति करती हैं कि मुझे सत्य के सिवा आता नहीं, सत्य बोले बिना रहा नहीं जाता इसलिए मैं सत्य बोलता हूँ।

मनुष्य के भीतर प्रभु छिपे हुए हैं इसलिए मनुष्य के साथ मैं स्नेह से, सभ्यता से व्यवहार करता हूं। यह वसुन्धरा भोग्या नहीं है, हम उनकी संतान है। यह विष्णुपत्नी है माँ है। "विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यम्।" तो एक प्रकार की दृष्टि और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृत्ति बदल जाती हैं। लोकतन्त्र के लिए साम्ययोगी व्यक्ति चाहिए और साम्ययोगी व्यक्ति नागरिक बनें इसलिए सर्वोदय का वैज्ञानिक जीवन दर्शन चाहिए। यह तीन चीजें साथ चलती हैं और आज तीनों खतरे में है। लोकतांत्रिक व्यवस्था चल नहीं पाती। जितनी लोकतांत्रिक संस्थाएँ हमारे हाथ में हों उनका दुरुपयोग करने में हमें जरा भी संकोच नहीं है। वह गाँव की पंचायत है, तालुका, जिलापंचायत, विधानसभाएँ और राज्य की सरकारें हैं या केन्द्र की हमें कोई चिन्ता नहीं है उनका उपयोग करनेमें। इसके इतने अनर्थ हो रहे है वह मुझसे अधिक आप अच्छी तरह से गिना सकेंगे, जिनकी मुझे चर्चा नहीं करनी है कहना केवल इसलिए कि लोकतन्त्र चाहिए, लोकतांत्रिक व्यवस्था चाहिए। Democracy is one of the most revolutionary ways of living Administra·tive structure का नाम Democracy कागज पर लिख दिया उतने से काम नहीं होता है, जीवन शैली में उसके मूल्य उतरते नहीं है। उनके मूल्य उता·रने के लिए जिम्मेवार नागरिक पैदा हो।

लोकतन्त्र यानी लोकतांत्रिक जीवन-व्यवस्था चाहिए। सर्वोदय, खादी के कार्यकर्ता यह नहीं समझते हैं। एक वार फिर गांधीविचार और अपनी संस्कृति को देखें, जांय वैज्ञानिक नजर से, १९८२ के संदर्भ में संपन्नता की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए देशों की सांस्कृतिक कठिनाइयों को देख करके।

आज अमेरिका में मनुष्य सुखी है ? शांत है ? प्रसन्न है ? नहीं है। क्योंकि वहाँअनेक अनर्थ हो गए। वहाँ कुटुम्ब टूट गए, व्यक्तिवाद के चक्कर में पड़ते-पड़ते सो वर्षों में योरप, अमेरिका आज यहाँ खड़े है कि व्यक्ति अकेली पढ गई है। एकांत सहन नहीं होता है और वह isolated individual हो गया है। व्यक्ति को इकाई मानते-मानते, वहाँ मनुष्य आज अकेला पड़ गया है। परस्परता relationship mutuality टूट गई। परिवार में माता, पिता का, भाई, बहन का स्नेह पी-पीकर के जो पुष्ट नागरिक होता हैं वहाँ वह स्नेह मिलता नहीं है। बच्चे का जन्म नहीं हुआ कि दो-तीन घण्टे में बच्चा चला गया दूसरे कमरे में तो माँ के दर्शन भी उन को नहीं होते हैं। स्पर्श कहाँ से हो ? तो व्यक्ति वहाँ अकेला पड गया।

मनुष्यों का मनुष्यों के साथ संबंध टूट गया क्यों कि बडे बडे units बने है। व्यक्ति यन्त्र जरूर चलाते है लेकिन एक-दूसरे के साथ संबन्ध नहीं। यन्त्र के साथ है, मनुष्यों के साथ नहीं। पति-पत्नी एक साथ भोजन नहीं कर पाते हैं। माता, पिता, बच्चे एक साथ नहीं रह पाते है। Dehumanised,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Depersonalised, industrialised life! यन्त्र मददगार, साथी, सहारा, आधार बनने के बदले स्वामी बने हैं। और उनकी दासता करने में, यन्त्रों की गुलामी करने में आज मनुष्य वहाँ अटक गया है तो उसको मनुष्यों की सहजीवन की ऊष्मा कहीं मिलती नहीं है, प्यार का स्पर्श कहीं मिलता नहीं है। बड़े-बड़े शहर हैं, बड़े दफ्तर हैं, centralisation of industries, centralisation of economic power, centralisation of political power. आज इसके कारण देश में इतने लोग दुःखी है। बढ़िया से बढ़िया कपड़े, बढ़िया से बढ़िया आहार और मोटरें है, पता नहीं क्या-क्या सब कुछ है और अब तो computor भी है, याद रखने की जरूरत नहीं है। हिसाब करना है तो computor करता है। मनुष्य के पास इतनी फुरसत आ गई है कि फुरसत के समय क्या करना कुछ मालूम नहीं है।

सांस्कृतिक संपन्नता के बिना आर्थिक संपन्नता अभिशाप है। परिश्रम के बिना कमाया हुआ धन पाप की ओर घसीट के ले जाता है। खैर! अनेक समस्याएँ हैं इसलिए लोकतांत्रिक व्यवस्था टिकेगी नहीं जब तक साम्ययोग पर तुष्ट पुष्ट व्यक्ति खड़ी नहीं होती। उसमें यदि सर्वोदयी जीवन-दर्शन है तो वह खड़ी होगी।

अब यह तीन बातें सैद्धांतिक रखने के बाद practically हम क्या कर सकते हैं? व्यवहार में कौन से कदम उठा सकते हैं इसका भी थोड़ा विचार एक नागरिक के नाते, एक व्यक्ति के नाते आप के पास रखना है। शिक्षण पद्धति को तो पता नहीं हम कब बदल पाएँगे। शिक्षण विधायक क्रांतिका एकमेव माध्यम है, एकमेव वाहक है, जहाँ जबरदस्ती के बिना, जहाँ शोषण के बिना मनुष्योंका परिवर्तन और गुणात्मक परिवर्तन, गुण विकास किया जा सकता है वे विद्या के आलय बनें इसे देखना नितान्त आवश्यक है।

महाविद्यालय, विद्यालय कब बनेंगे? मालूम नहीं है, लेकिन यदि दामनगर तालुके में, जिलेकी बात करें तो अमरेली जिलेमें हम यह देखें कि गाँव के बच्चे जो शहरों में आते हैं, कम से कम हाईस्कूल के या कॉलेज के लिए तो जो होस्टेल्स बड़े-बड़े हैं उनमें बच्चों को न रहना पड़े। लड़कों के लिए, लड़कियों के लिए छोटे-छोटे पारिवारिक होस्टेल्स बनें, याने आश्रम पद्धति से जहाँ जिया जा सके। कोई सर्वोदय प्रेमी है, कोई वानप्रस्थ ले सकता है ऐसी व्यक्ति है तो उनको अपने जिले में ऐसे पारिवारिक छात्रालय बनाने की ओर ध्यान देना होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दस या बारह लड़के रखते हैं, एकाध एकड़ जमीन रखी है, जिसमें लड़के शाक-सब्जी उगा सकते हैं, मेहनत कर सकते हैं। एक work shop बनाएँ जिसमें लड़के कुछ काम कर सकते हैं, किस प्रकार का work shop बनाएँ, क्या करें इसको तफसील में नहीं उतरूंगी लेकिन पारिवारिक छात्रालय—योजना बने और अमरेली जिलेमें ऐसे पांच—छः पारिवारिक छात्रालय खड़े हों जहाँ फीस पैसे में नहीं लेंगे। वह यदि गाँव के लड़के आते हैं उनसे अनाज लिया जाय। आधा अनाज लिया जाय और आधा परिश्रम से वह फीस दें। तो पैसे में फीस नहीं लेंगे श्रम में लेंगे। वहाँ दस—बारह लड़कों के साथ कोई निवृत्त परिवार रहें, पचास से, ५५ से अधिक उम्र हो गई है और घर में बच्चे लड़के धंधा, उद्योग जो कुछ है सम्हाल सकते हैं, ऐसे व्यक्तियों को निकल जाना चाहिए।

राष्ट्र आहुति के बिना नहीं बनता है, और अब आहुति देने के लिए लाठी अपने सीने पर खाने की जरूरत नहीं है, गोली खाने की जरूरत नहीं है, जेल भर देने की जरूरत नहीं है। यह विधायक शहादत का पर्व है, यह जिन्दा बनकर शहीद होने का पर्व है, मरकर शहीद होने का पर्व नहीं। और यह हमें पांच-दस वर्ष करना पड़ेगा कि छात्रालयों में थोड़े बच्चे वृक्ष लगाना सीखेंगे, साग सब्जी उगाना सीखेंगे और घर के जो माता—पिता होंगे, पारिवारिक छात्रालय में जो दंपती होंगे उनके साथ मदद करेंगे गृह—उद्योग में, सब मिलकर एक परिवार है इस ढंग से जिएँगे। ये परिवार रक्त के आधार पर नहीं, ज्ञाति के आधार पर नहीं, यौन आधार पर नहीं, विद्या की आवश्यकता है इस आधार पर बनेंगे। तो हमको संस्कार—सिञ्चन करने की भूमि मिलेगी। ऐसे छात्रालय बना सकते हैं, तो बच्चों को बचा पाएँगे। विद्यालयों की बात आज मैं नहीं कर पाऊँगी।

शिक्षण के नये प्रयोग होने चाहिएँ, Daccan eduction Society बनाने वालों ने तिलक, गोखले, भाण्डारकर आगरकर इन लोगों ने महाराष्ट्र में एक नई परंपरा बनाई राष्ट्रीय शाला को शुरू करके, गांधीजी ने नई परंपरा खड़ी की और ऋषि तुल्य भागवत—भक्त नानाभाई भट्ट, गिजुभाई सब लोग भावनगर जिले में से सौराष्ट्र में फैल गए, डोलरराय मांकड़ जाकर अलियाबाड़ा में बैठ गए, आपकी तो ऋषियों की, भक्तों की भूमि है। यहाँ भला मैं क्या कह सकती हूँ ? उन्होंने प्रयोग किए थे। संदर्भ बदलते हैं फिर नए प्रयोग करने पड़ते हैं।

पुराने प्रयोगों में से जो सुसंगत होगा उतना लिया जो विसंगत होगा उसको बहुत प्रेम से छोड़ दिया, विसर्जित कर दिया, इस प्रकार नए—नए प्रयोग करें। शिक्षण में नए प्रयोग करने की जिनकी हिंमत होगी उनके साथ बात करूं कि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

छात्रालय बनाने में तो बहुत कीमत चुकानी नहीं पड़ती है, लेकिन गाँव के बच्चे आपके हाथ में आ जाएँगे १०–१२ साल की उम्र के लड़के या लड़कियाँ हैं, उनको सिखाइए यह सर्वोदयी जीवन–क्रान्ति–दर्शन, यह साम्ययोगी बनने की संस्कारिता वहाँ १०–१२ व्यक्तियों के, बच्चों के साथ पैदा होगी, हो सकती है। गाँव में शहर में आनेवाले लड़के बहुत जल्दी बिगड़ जाते हैं, उनका धरती का प्रेम जल्दी निकल जाता है उनको लगता है कि हीरा घिसने का काम करना अच्छा है। खेती में तो हजार रुपया साल भर में नहीं आता है, यहाँ मैं महीने में कमाता हूँ। सारा का सारा मूल्य बदल गया है, जीवन की कीमत हजार रुपये में वह तौलने लगा। वह दस साल का, पन्द्रह साल का लड़का, उसकी जिंदगी महीने के हजार रुपए की तराजू में तौली जाती है तो मुझ जैसे की आँखों में खून के आँसू आते हैं। अपने बच्चों को हमने इतना गिरा दिया है, अपने बच्चों को हम बेचते हैं क्योंकि मोटी रोटी नमक के साथ खाना गरीबी कहलाता है और रुपये के नोट हाथ में आये तो अमीरी कहलाती है।

जीवन का मूल्य, जीवन की गुणवत्ता आंकने के, समझने के हमारे मापदण्ड बदल गए ३०–३५ वर्षों में। ५० वर्ष पहले की दुनिया मुझे मालूम नहीं है लेकिन २५ वर्ष पहले मैं भूदान में काम करती थी तब भी खानदानी गाँव में जिन्दा थी। हरेक गरीब से गरीब आदमी भी कष्ट करके लेना पसंद करता था। भूमिका दान लेने में संकोच करने वाले 'हम दान नही लेंगे मुफ्त का' यह कहने वाले अत्यंत अभिजात खानदानी मजदूर मैंने देखे हैं हिंदुस्तान के कोने–कोने में। ३१० जिले में घूमी हूँ मैं। हिन्दुस्तान कागज के नक्शे पर नहीं मेरे हाड़ माँस में समा गया। घूमते–घूमते इतनी एकता हो गई।

तो यह पारिवारिक छात्रालय सर्वोदय जीवन दर्शन को जिलाने के लिए, आने वाली पीढो में नए बीज डालने के लिए आवश्यक है। छात्रालय नहीं चला पाते तो एक काम हो कि जितनी छुट्टियाँ है स्कूलों में कॉलेजीस में उनमें अमरेली जिले में या तालुके के स्तर पर काम करते हैं तो दामनगर तालुके में युवकों के युवतियों के, लड़कों के, लड़कियों के, कुमारों के, शिशुओं के शिविर चलाइए। पांच दिन, सात दिन बच्चों को लेकर कहीं बैठ जाइए। मनोरंजन कीजिए, रंजन के मारफत शिक्षण दीजिए। कथाओं के द्वारा रामायण, महाभारत, संतों के चरित्र सुनायें! कल वह दुहे गा रहे थे और प्यार से कैसी सुन्दर–सुन्दर बातें उन्होंने कहीं। वह पिता की या कन्या की बात हो या बाद में जो दुहे गाए वह बात हो या मनोरंजन,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बुद्धिरंजन, श्रमदान के मारफत हो। जितनी छुट्टियाँ है, अमरेली जिले में उनकी व्यवस्थित योजना हो जानी चाहिए। दो महीनों की छुट्टियाँ हैं तो एक महिने उनका शिबिर के रूप में चले जिसमें कुछ ठोस प्रोजेक्ट श्रमदान का हो। श्रमदान के शिबिर में कुछ काम हुआ तो बच्चों को समाधान होगा कि पांच दिन में हम इतना काम करके गए।

मेरे जीवन के वह सुनहले दिन निकल गए हैं। भूदान आंदोलन में काम करती थी तो असम में सुवर्णश्री नदी देखी। तेजपुर, नॉर्थ लखीमपुर जिला, उसकी बात कर रही हूँ। सुवर्णश्री नदी में बांध नहीं बंधता था सुना तो विमला चली मुख्य मंत्री के पास। 'बहनजी ! बन नहीं सकता'। 'भाई साहब ! पन्द्रह–पन्द्रह, बीस बीस गाँव बह जाते हैं, इस नदी के लिए कुछ करना पड़ेगा, बाँध बनाना पड़ेगा।' 'नहीं बहन ! वह ओवरसीयर, इंजिनीयर सब कहते हैं, बंध बन नहीं सकता'। उनके जितने ओवरसीयर थे, इन्जिनीयर थे सबको शिलोंग बुलाया। मैं शिलोंग गई, बात की, उन्होंने कहा बांध नहीं हो सकता।

मैंने कहा मैं हार नहीं मान सकती हूँ, और इक्कीस दिनों तक सुवर्णश्री नदी के किनारे–किनारे गाँव के मुखियों को लेकर मैंने यात्रा की। मैंने मुख्यमंत्री को कहा कि मैं डेम बांधूगी तब आपके पास वापस आऊँगी, तब तक नहीं। इक्कीस दिन तक पदयात्रा की। गाँव के लोगों में एक होती है Organic intelligence. गाँव में है शहरों में बन्द हो गया उसका रास्ता। पुस्तकों की बातें पढ़ते-पढ़ते, रटते–रटते आंतरिक प्रज्ञा जो है वह बधिर हो गई, लेकिन गाँव में बड़ी जागृति है। तो मुखीयों ने मुझे इक्कीसवें दिन कहा कि बहनजी ! यहाँ बांध बन सकता है।

बांध बन सकने की शक्यता थी वहाँ हमने डेरा डाला। तंबू डाले, बांसकी झोंपड़ियों बनी, साढ़े तीन महिने नदी के पात्र में पच्चीस गाँव के लोगों के साथ दिन के आठ–आठ घण्टे हमने काम किया, नदी का बांध बन गया। उसके बाद सरकारी अधिकारी आए, उन्होंने उसको पक्का बनाया और गाँव के लोगों को साढ़े तीन महिने की मजदूरी दी, वह बात अलग है। लेकिन वह क्या सर्वोदयी है जो हार मानता है ? वह क्या नवजवान है जो हार मानता है ? हार मानने वाले जी नहीं पाते। जिंदगी जिंदादिलों का काम है, कायरों का नहीं।

यह इसलिए कहा कि यदि छात्रालय नहीं बनते हैं तो जिले में कुछ क्षेत्र देखने चाहिए, जहाँ पीने के पानी की व्यवस्था न हो या सिंचाई की व्यवस्था न हो।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ projects बन सकते हैं ऐसे जिनसे लड़के अपने काम का नतीजा देख सकें। ऐसे कुछ projects खड़े करें और वहाँ लड़कों के शिविर लगाएँ, संस्कार सिंचन हो। बुला लीजिए हमारे सुब्बाराव को जिसने शिविर चलाने में अपनी हड्डियाँ घिस दी हैं। हमारे बीकानेर जिले के छत्तरगढ़ में मैंने शिविर चलाने उनको बुलाया। २५० लड़कों को लेकर दस दिन तक सुब्बाराव ने जो काम किया है, शिविर चलाया है, देखते ही बनता है। तो अमरेली जिले में घूम मचा दीजिए आने वाले एक एक-दो साल। हम तो बिगड़ चुके हैं अब आगेवाले न बिगड़ें इसकी कुछ योजना करें। यह श्रमदान, स्वाध्याय, संस्कार सिंचन तीन काम एक साथ चलें, ऐसे शिविर हों। विस्तार में नहीं उतरती हूँ लेकिन यह काम करने लायक है।

यदि इस जिले में खादी का काम चलता है, जितने आठ, नौ, दस केन्द्र हैं तो मैं बहुत नम्रता से कहती हूँ, क्योंकि मेरा अधिकार तो नहीं है, मैंने खादी का काम किया नहीं है जो किया है उसका तो किसी भी गलतफहमी के भय के बिना, आत्म विश्वास से कह देती हूँ। झूठी नम्रता और झूठी दीनता साधक को, भक्त को शोभा नहीं देती। भक्त की भाषा कैसी होती है मालूम ? तुकारामने कहा है—

"तुका म्हणें आम्हीं विठलांचे दास,
केला पिंडीं ग्रास ब्रह्मांडाचा।।"

तुकाराम कहते हैं हम विठ्ठल के दास है। तो दास बनके क्या किया है ? आत्म-विश्वास की खुमारी है। नम्रता का ऐश्वर्य और निर्भयता की रौनक है। तो खादी का काम मैंने किया नहीं, लेकिन एक बहन हूँ, मुझे सूझता है इतना कह दूँ कि उनमें जितने कार्यकर्ता हो, जितने बुनकरों से हम खादी बुना लेते हैं और जितनी कत्तिने हैं ये मिलकर एक परिवार हो गया। यह गांधी का काम करनेवाला परिवार है। इसके लिए गांधी जीवन-दर्शन या सर्वोदय जीवन-दर्शन देने के, संस्कार सिंचन के तालीम वर्ग चलाने चाहिएँ। नौ केन्द्रों में यदि आप तालीम वर्ग चलाते हैं, उसके लिए फिर अलग व्यवस्था करनी न पड़े लेकिन केन्द्र में ही केन्द्र के कार्यकर्ता और जो कतिने हैं, बुनकर हैं यह सब व्यापक परिवार बन जाय। वहाँ नौकरी देने वाला या लेने वाला यह संबंध न रहे। बापू के आश्रम में जिस प्रकार देवदास गांधी का लड़का हो और किसी झाड़ू लगाने वाली बाईका लड़का है दोनों के लिए समान ही सम्बन्ध प्रेम का बन गया था।

अब यह खादी-जगत् आत्मीयता के, परिवारिकता के क्षेत्र और वातावरण को वापस लाए और वहाँ सर्वोदय जीवन का सेवन करनेवाले, समझनेवाले व्यक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खड़े हों। नौ क्षेत्रों में कुछ नहीं तो नौ सौ आदमी खड़े हो जाँय। परिवारों को कतिनों को, बुनकरों को समझाएँ, कार्यकरों को उनके ढंग से समझाएँ लेकिन एक साल में नौ केन्द्र में यदि सौ-सौ व्यक्तियों के तालीम वर्ग एक—एक सप्ताह चलते हैं, तब कातने—बुनने वालों को लगेगा कि अरे ! मैं सूत वेचने जाता हूं तब तो ये खरीदते हैं और मुझे देते भी हैं लेकिन शिविर में हम साथ बैठे हैं, साथ खाते हैं, साथ पीते हैं। आज जो भेदभाव आ गया है, स्तर बन गये हैं वैसे खादी के काम करनेवाले वर्ग को भी उजला वर्ग और अपने आपको गरीब या श्रमिक का वर्ग समझेंगे। कत्तिन, बुनकर, कार्यकर्ता इनमें जो स्तर बन गए हैं वे मिट जाँय, उनमें एक पारिवारिकता आ जाय और गांधी—जीवन दर्शन का जल इतने लोगों में ले जाय तो जैसे बच्चों का काम मैंने कहा धूम मचे इस जिले में पारिवारिक छात्रालय या युवकों के संस्कार शिविरों की, श्रमदान, संस्कार सिञ्चन, स्वाध्याय शिविरों की, वैसे खादी कार्यकर्ताओं की भी यह तालीम के वर्ग की एक धूम मचे।

ये दो बातें यदि करते हैं तो एक तीसरी बात मुझे कहनी है सामान्य नागरिकों से। वे कहेंगे कि देखो भाई ! हम आए आपके सत्संग शिविर में, दीदी के साथ कोई लेना—देना नहीं और नहीं है आपके सर्वोदय विचार—दर्शन के साथ लेना देना। हम तो सत्संग शब्द पढ़के आए हैं। और कुछ नहीं पड़ी है, किसी की नहीं पड़ी है, हमें तो पड़ी है सत्संग की। ऐसे जो व्यक्ति हों, बहनें हो, भाई हों उनको हम कहेंगे कि अपनी फुरसत का समय निकालो। इस जिले में सत्संग का वातावरण फैलाने लिए आप कितना समय देंगे ?

जिले की समिति बनाइए, तालुके की बनाइए, मित्र—मंडल बनाइए आप। सत्संगी व्यक्ति इतना ही करें। फिर सत्त्व प्रधान—सात्त्विकता को बढ़ाने वाले नाटक हों, नाटिकाएँ हों, भजन हों, कथाएँ हों। ऐसे लोकरंजन करने वाले लोकनृत्य हों लोकगीत हो तो इनके लोक संमेलन या शिविर जिले भर में करें। जिस दिन गाँव में यह टोली गई है अपना सब सामान लेकर, हम तो यह बैलगाड़ी लेकर, बैल गाड़ियों में सामान भर करके आसाम में घूमते थे और वह लोकनृत्य भी होते, कथा भी होती, भजन भी चलता और उनका जो लोकगीत है वह भी चलते, अंत में बात भी करते। लेकिन गाँव में टोली गई है, बैलगाड़ीयों में सामान भरके। यह न कहिए कहाँ से मोटर, कहाँ से ट्रक मिलेगा ? गुजरात तो संपन्न प्रदेश है शायद मिल भी जाय। मगर हम लोगों को तो केवल बैलगाडी ही मिली। पंजाब में वह रबर टायर लगाई हुई बैलगाडी, आसाम में तो वह भी नहीं मामूली बैल गाड़ी उसमें हम सामान ले जाते थे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस गाँव में टोली गई है, कहीं धर्मशाला में या मंदिर में, मंदिर के आंगन में हमारा डेरा पड़ता और चूल्हा लगा करके हम लोगों की रसोई बनती। १५–२० व्यक्ति कभी २५ व्यक्ति हो जाते। पहला काम बालकों की सभा होती सत्संग होता, दूसरा काम शाम को सामुदायिक प्रार्थना होती और तीसरा काम रात को सांस्कृतिक कार्यक्रम कुछ भाषण वगैरह की बात नहीं, लेकिन सत्सङ्ग का वातावरण खड़ा करने की ही बात।

ऐसे सत्संग यात्रा निकल सकती है, जिनकी रूचि है वह करें भक्ति करना यानी जीवन से दूर जाना नहीं। राम की भक्ति करनी है तो झूठ बोलना छोड़ दो, कृष्ण की भक्ति करनी है तो किसी से नफरत–द्वेष करना छोड़ दो। छोटी बातें सरल भाषा में समझाएँगे तो यह सत्संग का वातावरण खड़ा होगा। आज परिस्थिति ऐसी है जिस छोर से आप समाज में मनुष्यता और मनुष्य को टिकाने के लिए मदद कर सकते हैं उस छोर को पकड़कर करना शुरू कर दो। कल देर हो सकता है।

जो कहेंगे कि हम सत्संग वगैरह नहीं जानते भाई! यह विमल बहन थोड़ी पढ़ी–लिखी है, देश–परदेश घूमी हुई है, अच्छा भाषण देती है हम सुनने के लिय आए। हम तो लोकतंत्र को मानते है, तो उनसे मैं कहूंगी कि लोकतांत्रिक व्यवस्था खतरे में है उसका कारण समझ लीजिए कि लोक का निर्माण नहीं हुआ मनुष्यों की भरमार है, अड़सठ करोड़ है सिर ही गिनने हों तो और आजकल चुनावों में सिर गिने जाते हैं दूसरा कुछ देखा, नहीं जाता। लोक का निर्माण नहीं हुआ। 'Government of the people, for the people, by the people.' Where is that people? जनता कोई दिखाई नहीं देती है। यह जनता के प्रतिनिधि, शासक वर्ग या नौकरशाही। They have exercising power in the name of the people, on behalf of the people जनता के नाम से, जनता की तरफ से अधिकारों का उपभोग करना, सत्ता का उपभोग करना यह काम चल रहा है। तो यह तो लोकतन्त्र नहीं है और लोग अपने को मिली हुई सत्ता जानते नहीं है। तो लोक का निर्माण करें। Not multitude of human creatures; the people. People has to be created. कॉलेज के प्रोफेसर्स है, शिक्षक है, डॉक्टर्स है, एंजिनीयर है, व्यापारी है जिनको सत्संग में रस नहीं है। राम को न भी मानते हों, मनुष्य को मानते होंगे? इतना मेरे लिए काफी है। जो मनुष्य को आज मानेगा और जो मानवीय मूल्य को आज मानेगा कल उसको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान माने ही छुटकारा है। क्योंकि भगवान् एक सत्य है, जीवन का परम सत्य है। तो—मानवीय मूल्यों को मानकर काम शुरू करें।

कहाँ से लोक निर्माण का काम शुरू करें ? लोकतांत्रिक संस्था में, लोकतांत्रिक मूल्यों का अपमान न हो इसके लिए कोई कमिटी बनाएँगे अमरेली जिले में, अपनी पंचायत में गुण्डागर्दी न चले, अन्याय न चले, शोषण न हों, लोगों को मतदान करने की सुविधा मिले इस प्रकार से प्रहरी बनेंगे। जो लोकतन्त्र को बचाना चाहते हैं यहाँ लोकतांत्रिक संस्थाओं के प्रहरी बनें।

आज मैंने आप से यह सारी बातें कहीं क्योंकि मेरे सामने देश की परिस्थिति है, दुनिया की परिस्थिति खड़ी है आँख मूंद करके देश और समाज से पीठ फेरकर मैं नहीं बैठी हूँ इसलिए। ध्यान हो, समाधि हो, अध्यात्म हो वह जीवन के अभिमुख है, जीवन से विमुख नहीं। इसलिए सुबह जैसे आपके पास ध्यान की बात करती हूँ, मौन की बात करती हूँ वैसे जो जीवन साधक है वह साधक बनने से यदि मनुष्य मिट जाता हो तो ऐसा समाजद्रोही और मानव द्रोही अध्यात्म किस काम का ? भाई ! वह ऐश आराम होगा। वह तो अमीरों का, बुद्धिनिष्ठों का ऐश—आराम बनेगा। मेरा जो गरीब नंगा, भूखा समाज है उसको ऐसा अध्यात्म और ऐसा आत्मबल चाहिए जिसमें साधक मनुष्य रहेगा, उसके मानवीय मूल्य कायम रहेंगे और देश का नागरिक भी रहेगा। तो देश की नागरिकता का मूल्य जो खतरे में है, उसको बनाने की दृष्टि से हम कटिबद्ध हो जाँय एक तरफ आंतरिक साधना है और बाहर समाज के साथ का काम है। तो सर्वोदयी समाज बनेगा, व्यक्ति साम्ययोगी बनेगी और व्यवस्था लोकतांत्रिक रहेगी। इन तीन मूल्यों को लेकर के, इन तीन कार्यक्रमों को लेकर के आपके जिले में, आपके तालुके में कुछ करने की प्रेरणा वह परम कृपालु परमात्मा आप सबको दें इस प्रार्थना के साथ इस समय का प्रवचन मैं विसर्जित करती हूँ।

———

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तम (पूर्णाहुति) प्रवचन

दि. २३-१-८२

मित्रो ! उन्नीस तारीख की शाम से यहाँ इस नगरी में श्रद्धा और प्रेम की गंगा बही, और दामनगर वासी मित्रों के प्रेम में स्नान करते-करते, एक अत्यंत गहरे संतोष का अनुभव मुझ समेत आप सबको हुआ होगा, यह मैं जानती हूँ ।

ऐसे शिबिरों में संगठन मुक्त, संस्थामुक्त, ज्ञातिमुक्त, संप्रदायमुक्त ऐसा एक परस्पर प्रेम का, आत्मीयता का वातावरण खड़ा होता है, ५०-१००-२०० व्यक्ति ऐसे मुक्तता के विशुद्ध आत्मीयता के वातावरण में, तीन या चार दिन रह सकते हैं, शिबिरों का पहला महत्त्व का मूल्य यह है ।

आज सज्जनों को इस देश में अपने अपने क्षेत्र में एकाकीपन लगता है, एक असहायता लगती है कि हम अपने जीवन में, अपनी संस्था-संगठनों में कुछ नैतिक मूल्यों का संरक्षण करने लगे लेकिन बाकी देश में इन मूल्यों की कोई परवाह नहीं है । एक एकाकीपन लगता है, मानों वही अकेला मूल्यों का संरक्षण कर रहा है । जब हम जिले के स्तर पर, राज्य के स्तर पर, राष्ट्रीय स्तर पर इकट्ठा होते हैं तो पहला साक्षात्कार होता है कि गाँव में, अपने तालुके में, अपनी संस्था-संगठनों में इन्हीं मूल्यों के रक्षण के लिए संघर्ष करनेवाले, पुरुषार्थ करनेवाले, शुभ संस्कारों का सिंचन करनेवाले और भी हैं । तो यह एकाकिता की भावना से जो कमजोरी आती है, एक निर्बलता आती है, शिबिरों जैसे प्रसंगो से वह निर्बलता, दुर्बलता, एकाकिता असहायता की भावना टूट जाती है, यह मेरे देखने में आया है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंजाब, हरियाणा, हिमाचल, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बिहार, बंगाल इतने राज्यों में १९८० की संक्रान्ति से मैं घूम रही हूँ तो एक अनुभव है कि नई शक्ति लोगों में पैदा हो रही है कि हमारे भी कोई साथी हैं, सहयोगी हैं। संगठनों की, संस्थाओं की दीवारें ढह जाती हैं; ज्ञाति, सम्प्रदाय और धर्मभेद की दीवारें ढह जाती है और खालिस मनुष्य, खालिस इन्सान एक दूसरे को मनुष्य के नाते देख पाते हैं "परस्परम् भावयन्तः।" परस्पर भावन में से, उपस्थिति के स्नेह में से बल पाते है। यह दूसरा लाभ है।

तीसरा लाभ यह है कि इन तीन दिनों के, चार दिनों के छोटे-छोटे शिबिरों में से यह ख्याल आता है कि वास्तव में कोई भी शिबिर सात दिन से कम समय का हो नहीं सकता। क्योंकि संस्कारों की धारणा, उसका सेवन करना इस के लिए समय चाहिए। यह तो श्रवण होता है, धारण करने का मुश्किल से समय मिले न मिले तब अपने को विदा होना पड़ता है। तीन दिन के संमेलन हो सकते है, मिलन हो सकते हैं। शिबिर कम से कम पांच या सात दिन का तो होना ही चाहिए जिस में शिक्षण के लिए कुछ अवसर मिले लेकिन इसका जो एक मानसिक, भावात्मक और सांस्कृतिक मूल्य है यह मैंने आपके सामने रखा।

चौथा मूल्य यह है कि आज की जो चुनौती है, समस्या है, चेलेंज है, इसको हम एक दूसरे के साथ बैठ करके अच्छी तरह से समझ सकते हैं। दृष्टि की विशदता विचारों को स्वच्छता, शिबिरों में से निष्पन्न हो सकती है और होती है। आज समस्या क्या है? नहीं मानियेगा कि इस देश की एकता, और नैतिक मूल्यों का उत्थान या चारित्र का रक्षण करने की इच्छा, आकांक्षा हम में ही है और बाकी अस्सठ करोड़ लोगों में है ही नहीं, ऐसा हम न मानें। सनातन काल से शुभ-अशुभ को, दैवी-आसुरी संपत्ति की लड़ाई मानवीय समाज में चलती ही आई है, चलती ही रहेगी। इसलिए इस देश में कोने-कोने में लोग पड़े होंगे कि जिनको यह इच्छा हो लेकिन हम बँट चुके है, बँटे हुए है। कुछ लोग कहते हैं देखो भाई! यह धर्म, अध्यात्म सब पूँजीवादियों के हाथ के खिलौने हैं, अमीरों के ऐश-आराम की बातें है। जिस को कुछ करना, धरना नहीं है, उन लोगों की यह पलायनवाद की बातें हैं। तो उस धारणा को बदला जा सकता है।

हम करेंगे समाज सेवा; धर्म के, अध्यात्म के विशुद्ध स्वरूप को लेकर इस देश की मिट्टी के कण-कण में लाखों संतों की, मुनियों की, योगियों की, सन्यासियों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की जो तपस्या पड़ी है उसमें से बल पाना यह जो अहिंसक प्रक्रिया है, शक्ति पाने की, उसको लोग भूल गए हैं कि अध्यात्म के अधिष्ठान के बिना इस देश में कोई समाज परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन या राज्य का परिवर्तन नहीं ला सकेंगे। तो समाज सेवा के लिए चिन्ता करनेवाले, अपना समय, धन, शक्ति खर्च करनेवाले एकाङ्गी प्रयत्नों में लगे हैं। उनकी मुश्किली है क्योंकि सत्ता की स्पर्धा में वह राष्ट्र को भूल जाते हैं। पक्ष के सिद्धान्तों को, मूल्यों को भूल जाते हैं ऐसी नशीली चीज सत्ता हैं। उसको हजम करने की शक्ति प्राप्त करने से पहले कूद पड़ते हैं। लड़ाई करना न जानें और समर क्षेत्र में जाँय तो घोड़े पर चढ़ना न जानें और बड़ा अच्छा—सा एक घोड़ा ले आएँ और चढ़ें ऐसी हालत हो जाती है।

राजनीति के क्षेत्र में या राजनीति के बाहर समाज सेवा करनेवाले जो लोग हैं उनको अपना परिचय नहीं। अपना तन, मन, वाणी उसके काबू में नहीं। अपने जीवन में स्वच्छन्दता को हटाकर संयम का अधिष्ठान निर्माण किए बिना जीवन में नैतिक मूल्यों का आचरण हो नहीं सकता। अणु—रेणु में करने की कोशिश या व्रत लिये बिना कूद पड़ते हैं। आज समाज सेवा के क्षेत्र में कलाकार, शिल्पकार, संगीतकार, राहत का काम करनेवाले, सेवा का काम करनेवाले कितने ही पड़े हैं और राजनीति में भी कितने ही सज्जन गए होंगे अलग—अलग पक्षों में और वह काम करना चाहते भी हों लेकिन बीज बोए बिना वृक्ष चाहते हैं, जड़ों के बिना, अधिष्ठान के बिना, काम करना चाहते हैं। इतना बड़ा जो वर्ग है उससे कहना है तालुके के, जिले के स्तर पर काम करें, और नागरिकों को बात समझ लेनी है कि चाहे जिस क्षेत्र में काम करो, राजनीति में करना है, वहाँ करो, और पक्षमुक्त सेवा संगठन बनाने है वह करो; रचनात्मक खादी का, सर्वोदय का, भूदान का, मानव सेवा का जीवदया का जो भी काम करना है, अध्यात्म के अधिष्ठान बिना नैतिक मूल्य ठहर नहीं सकते। Moral values cannot sustain and stand by themselves they require foundation and that foundation is spirituality. धर्म, अध्यात्म कहता है कि तू आत्मा है रे! सहजात्म स्वरूप तेरा निजरूप है रे! वहाँ प्रतिष्ठित हो जा। तो समाज सेवकों को अभिमुख करना है विशुद्ध अध्यात्म की तरफ ताकि उनकी सेवा में शक्ति आए। ताकि वह राजनीति में जाँय तो सत्ता के जहर को पचा सकें। संपत्ति के मद को पचा सकें। ऐसी शक्ति प्राप्त होने के लिए उनको अध्यात्म के सम्मुख बनाना है जो अध्यात्म मानव—निष्ठ है, जीवन—परायण है, पदार्थ—परायण नहीं, उपभोग—परायण नहीं। मानव निष्ठ और जीवन—परायण अध्यात्म है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अध्यात्म और धर्म के नाम से काम करनेवाली लाखों संस्थाएँ इस देश में हैं, जैनों में है, हिन्दुओं में है, इन सबको बतलाना है, इन सबको जाग्रत करना है, सावधान करना है कि जीवन-विमुख अध्यात्म इस विज्ञान के युग में ठहर नहीं सकेगा। जो धर्म मानव-निष्ठ नहीं है, जीवन-परायण नहीं है वह ठहर नहीं सकेगा। मनुष्य-मनुष्य है इसलिए पवित्र है और सब मनुष्य समान हैं। इस देश में जितने धर्म हैं उन सब धर्मियों को नागरिक के नाते जीने का समान अधिकार है। यह बातें धर्म और अध्यात्म के नाम से संगठन चलानेवालों से कहनी है, उनको समझाना है, उनको बतलाना है। अरे ! गरीबी-अमीरी न भगवान की बनाई हैं न प्रारब्ध की, यह मानव-रचित समाज-रचना का दोष हैं। यह मानव निर्मित अर्थतन्त्र का दोष है। यह मानव-निर्मित राजकीय व्यवस्था के दोष हैं। इनको हटाना है, इनका निराकरण करना है। न कोई ऊँचा है, न कोई नीच है। मनुष्य मनुष्य होने के नाते समान और पवित्र है। यह बात देश के धर्मनिष्ठ लोग और अध्यात्मनिष्ठ लोग नहीं मानेंगे तो एक तरफ से है विज्ञान का आक्रमण और दूसरी तरफ से शोषितों, दलितों का। शोषण का अंत करने की प्रतिज्ञा करके बैठे हुए साम्यवाद और समाजवाद की धारा में माननेवाले लोगों का भी आक्रमण है।

यह चीन का या रशिया का राजकीय आक्रमण नहीं होगा, यह सशस्त्र आक्रमण नहीं यह वैचारिक आक्रमण है। एक तरफ से समाजवाद या साम्यवाद विचारधारा का आक्रमण है। दूसरी तरफ से वैज्ञानिक दृष्टि का आक्रमण हैं। जो पश्चिम की ओर से है, योरप, अमेरिका से है। वैज्ञानिक धर्म, वैज्ञानिक अध्यात्म, मानवनिष्ठ शोषण का अंत करनेवाला अध्यात्म और धर्म जो हमारी भूमि में सोया पड़ा है, उसको जगाना पड़ेगा।

इन दो आक्रमणों के बीच टिकने के लिए और ठहरने के लिए अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय से जो एक नया समन्वित जीवन-दर्शन होगा उसका उद्घाटन करना होगा। उस विचार को समझाना होगा। उस विचार के अनुसार जीवन कैसे होगा इसकी तालीम, इसका शिक्षण देनेवाले केन्द्र जगह-जगह खड़े करने पड़ेंगे। केवल विज्ञान का युग आया है कहने से, संगठित धर्मों का गया और अध्यात्म का आया है—कहने से काम नहीं चलेगा। तो इन शिबिरों के द्वारा ध्यान आकर्षित करना चाहती हूँ भारतीय नागरिकों का। अरे! चुनौती आ पड़ी है। To corelate religion with science & spirituality. अध्यात्म भी विज्ञान ही है, वह जीवन का विज्ञान है ! wishful thinking नहीं है। यहाँ मान्यता, विश्वासों को कोई स्थान नहीं है। "सत्ये प्रतिष्ठिता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धारणा श्रद्धा इति।" ऐसी श्रद्धा को स्थान है लेकिन मान्यता, विश्वास-परायणता, अन्धश्रद्धा इसको जगह नहीं है। तो शिबिरों के द्वारा एक नए समन्वित जीवन-दर्शन का उदय हो। इस जीवन-दर्शन को व्यवहार में उतारने वाले केन्द्र या आश्रम या research centre जगह-जगह खड़े हो जांय। यह भी एक महत्त्व है शिबिरों का। मेरी दृष्टि से और जितनी मेरी शक्ति है इस मुद्दे की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करने का मैं प्रयत्न करती हूँ।

छठा मूल्य जो ऐसे शिबिरों में से निष्पन्न हो सकता है और होता हुआ देखा गया है वह विज्ञान को और जीवन परायण मानव-निष्ठ अध्यात्म को साथ जोड़ना। इसमें महान् प्रयास करने वाले पहले थे रामकृष्ण परमहंस। "The prophet of scientific spirituality." इसलिए विवेकानन्द ने कहा "स्थापकाय च धर्मस्य।" उससे पहले धर्म संस्थापक नहीं थे क्या? ऐसा नहीं है लेकिन सर्व धर्म-सहभाव, सर्व-धर्म-सम-आचरण, रामकृष्ण ने बैठकर अपने जीवन में प्रयोग करके देख लिया। हिन्दु धर्म के अनुसार उपासना की, भक्ति की, तन्त्र की, ज्ञान मार्ग की, वेदान्त की, निर्विकल्प समाधि की। इस्लाम' धर्म में क्या सत्य है देखने के लिए दक्षिणेश्वर मंदिर के बाहर बैठे, उपासना, साधना की। जीसस के कहने में क्या सत्य है? जीसस हो गए है या नहीं यह देखने के लिए साधना की।

उन्होंने वैष्णव धर्म का नए युग में नया अर्थ नरेन्द्र को सिखाया कि "अरे! जीवदया नहीं, वैष्णव धर्म जीवदया नहीं, जीवसेवा।" यह जीवकी सेवा, शिवभाव से जीव की सेवा यह वैष्णवों का धर्म है। भूतदया नहीं केवल दया, charity, दान, पुण्य उसमें से वैष्णव धर्म को बाहर निकालना, उसकी बंगाल में बहुत आवश्यकता थी। नहीं तो जीवदया के नाम से, दान करने से नाम से अहंकार पनपता और एक तरफ से दान माँगनेवाले, हाथ फैलानेवाले दीन, हीन जनों का समुदाय ऐसा एक विभाजन मानव-समुदाय में रहता। विवेकानन्द भी कहने लगे कि एक युगधर्म का बहुत बड़ा संदेश मुझे मिला है, मैं हिन्दुस्तान के कोने-कोने में उसको फैलाऊँगा। इसलिए रामकृष्ण-मिशन के मारफत उन्होंने संन्यास को जीवन-परायण बना दिया। संन्यासिओं को काम में लगा दिया कि नए ढंग से उसको जाग्रत करो, उसको शिक्षित करो।

उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।

"अमृतस्य पुत्राः" "Children of immortality." ऐसा कहके हिन्दु, मुस्लिम, क्रिश्चियन यह धर्मभेद, ज्ञातिभेद भुला करके उन्होंने संन्यासियों की मारफत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दवाखाने खुलवायें, कैसे लोग हँसे होंगे ? आज जैसे हम पर लोग हँसेंगे कि हम विज्ञान और अध्यात्म का समाजसेवा और आत्म–साधना का, समन्वय करना चाहते हैं। सेवक और कार्यकर्ता जीवन साधक बनें, नागरिक भी बना रहें, मनुष्य भी बना रहें, यह जब बात करती हूँ तो लोग मन में हँसते हैं। आत्म–साधना करना यानी सब प्रवृत्ति को छोड़ देना, निवृत्ति ग्रहण करना माना जाता रहा है और मैं कहती हूँ प्रवृत्ति और निवृत्ति में से वृत्ति को उड़ा दो। जो शेष रहेगा वह रहने दो, वृत्ति को उड़ा दो। प्रवृत्ति में से वृत्ति को उड़ा दोगे और निवृत्ति में वृत्ति को रखोगे तो एक नया पाखंड या नया अहंकार या नया संप्रदाय खड़ा होगा। लोग हँसते हैं, असंभव है कहते हैं।

वही विवेकानन्द से कहा होगा कि संन्यासी और विद्यालय खोलें ? संन्यासी वाचनालय चलायें ? जहाँ नदियों में कहीं बाढ़ आई है तो राहतसमिति रामकृष्ण–मिशन की बनें यह क्या बात है ? संन्यासी गाँव–गाँव में घूमे ? अरे ! इन्होंने संन्यासियों को भौतिकवादी बना है। आत्म–साधना की तरफ से इन को मोड़ दिया है। तो वह नर–केशरी खड़ा हो गया कि "भारत में एक भी व्यक्ति दुःखी है तब तक माँ मुझे सौ नहि हजार जन्म लेने पड़ें तो जन्म देना, मुझे मुक्ति न दे।"

तो यहाँ समाज सेवा के पीछे अध्यात्म का अधिष्ठान खड़ा करना है और अध्यात्म को जीवन के और मनुष्य के अभिमुख बनाना है। यह पुकार है आज, आज की चुनौती है अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय करना। यह करने के लिए रामकृष्ण देव के बाद विवेकानंद, उसके बाद बहुत हुए हैं, सबके नाम नहीं लूं। वह राजाराम मोहनराय हो, ईश्वरचंद्र विद्यासागर हो, लाला लाजपतराय हो, लोकमान्य तिलक हो। अनेकों के नाम ले सकती हूँ लेकिन सबके नाम समा जाएँगे ऐसा एक नाम है महात्मा गांधी का। भागवत श्रेष्ठ, जीवन–साधकों में श्रेष्ठ, भारतीय संत–परंपरा के उज्ज्वल मेरुमणि इस युग में आए और उन्होंने इन दोनों का समन्वय करने का रास्ता खोल दिया, जिसकी हम संतान आज यहाँ बैठे हैं। हम कार्ल मार्क्स की और लेनिन की भी संतान है और गांधीजी की भी संतान है और मैं तो कह सकती हूँ कि हम विनोबाजी की भी संतान है। विनोबा, जयप्रकाशजी की संतान कहलाने का सम्मान हम को मिला है। गांधी, विनोबा, जयप्रकाश एक समृद्ध सर्वोदय का जीवन–दर्शन, हम लोगों के, मेरी पीढ़ी के लोगों के सामने तो है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सातवाँ मूल्य— मेरा यह एक और मुद्दा है कि जिनको गांधी विचार दर्शन, जीवन-दर्शन का स्पर्श हुआ, गांधीजी की चेतना का स्पर्श हुआ है वह जहाँ भी बैठे हों उनको हडबड़ा करके, सब छोड़ करके उस जीवन-दर्शन का आज के संदर्भ में नवसंस्करण करने का साहस करना होगा। हमने मान लिया था कि राज्याश्रय से गांधी विचार के प्रसार में लाभ होगा। बुनियादी तालीम, नई तालीम को राज्याश्रय मिला तो एक बार सहसा घूमते घूमते बिहार में विनोबा बोल उठें कि अरे ! यह बुनियादी तालीम के जो तुम्हारे विद्यालय हैं वहाँ मैं जाता हूँ तो यह "विनायकम् प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्।" विनायक बनाने गए और वानर बना बैठे ऐसी तुम्हारी दशा हो गई है। राज्याश्रय से नई तालीम का यह हाल हुआ तो खादी के ताने-बाने में जो नई क्रान्ति का महागान हुआ था वह चला गया और खादी में हम व्यापार ले आए। राज्याश्रय के कारण हमारी दृष्टि बदल गई, क्रान्ति की दृष्टि बदल गई, वह केवल खादी ग्रामोद्योग की बात कर रही हूँ, नई तालीम की बात कर रही हूँ, ऐसा नहीं भूदान के बाद, ग्रामदान और ग्राम-निर्माण का पर्व आया उस ग्राम-निर्माण के पर्व में भी sanction of the state and sanction of the state legislation की राह देखते-देखते, सरकारी अधिकारियों का सहयोग लेकर के, ग्राम-निर्माण का काम करने के प्रयोगो में वह जो भूदान-मूलक, ग्रामोद्योग-प्रधान, सत्ता निरपेक्ष, दंड-निरपेक्ष लोक-शक्ति का जागरण और संगठन करना था, वह बात हमारे हाथ से छूट गई। यह हमें आज सम्पूर्ण चित्त से कबूल करना होगा अपने पास और समाज के पास।

तो पैंतीस वर्षों से गांधी जीवन-दर्शन की, गांधी के खादी ग्रामोद्योगों की क्रान्तिकारिता व्यक्त नहीं हो सकी, वह क्रान्तिकारिता राज्याश्रय में डूब गई, इसलिए हमारे सामने आज धर्म है आवश्यकता है कि खुशी से स्वेच्छा से राज्याश्रय छोड़ दें। फिर से स्वावलंबन के रास्ते निकल पड़ें। जितने कार्यक्रम है इसमें एक भी कार्यक्रम बढ़ाने की जरूरत नहीं होंगी। आश्रित के चित्त में कभी आत्म-विश्वास हो नहीं सकता, पनप नहीं सकता। हमने माना था कि वह होगा। कौन चलाता है? कौन-सा पक्ष चलाता है? कौन सी विचारधारा चलाती है? यह बात मेरे लिए गौण है, लेकिन जनक्रान्ति होनी चाहिए। अरे! अपने को व्यक्ति की चेतना में क्रान्ति करनी है तो गांधी जीवन-दर्शन को व्यक्त करनेवाले साहित्यकार, कलाकार, लोकनृत्यवाले, लोकगीतवाले, खादी-ग्रामोद्योग से सर्वोदय के विचार का प्रचार करनेवाले यदि स्वेच्छा से, एक ही राष्ट्रीय उद्घोष करें कि— हमारी संस्था, संगठनों को राज्याश्रय छोड़ देना है राज्याश्रय के जितने प्रतीक

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होंगे उन प्रतीकों को स्वेच्छा से राज्य को लौटा देंगे और हम अपने स्वावलंबन पर खड़े होंगे तो यह जो थोड़े-से-बादल छा गए तीस-पैंतीस वर्षों में थोडी-सी मलिनता आ गई हमारे व्यवहार पर, हमारे कार्य में, वह मलिनता दूर हो जायगी।

भारतीय जनता कितनी उदार है? जितनी धरती उदार है उतनी मेरी भारतीय जनता उदार है। आज भी क्षमा करने में वे देर नहीं लगाते। कण बोने पर मन देनेवाली वसुंधरा जैसा भारत-वर्ष की जनता का मानस है। यह मैंने खूब देख लिया है। पचोस वर्ष पहले देखा आज भी देख रही हूँ, तो कितनी उदारता है? राज्याश्रय छोड़ने का यदि राष्ट्रीय संकल्प गांधी-जीवन दर्शन पर काम करनेवाली संस्थाएँ, संगठन, विद्यालय, खादी-ग्रामोद्योग के केन्द्र, ग्रामदान या ग्राम-निर्माण का काम करनेवाले लोग ले लें—सब यह कहें कि छोड़ दिया राज्याश्रय तो जनता में बैठे जनार्दन जीवन सम्भाल न लें ऐसा नहीं होगा पर हम तो कांप रहें है कि अब अनुदान खतम होंगे, अब सहायताराशि खतम होगी, तो क्या होगा? कैसे जिएँगे? ऐसी पंगु खादी! ऐसे पंगु ग्रामोद्योग? और ऐसा पंगु सर्वोदय का कार्यकर?

हम लोगों में जो गांधीजी की संतान है वे समझ लें कि Gandhi Jivan Darshan is a most radical and revolutionary philosophy of life, economical philosophy, political philosphy. इसको यदि हम समझ लें जैसा कि चालीस देशों में घूमते-घूमते मैंने देख लिया, साम्यवादी देशों में युगोस्लोवाकिया, झेकोस्लाविया, रूमानिया, बल्गेरिया इन देशों में, चीन का बहुत थोड़ा हिस्सा मैंने देखा था, लोकतन्त्रवाले अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, केनेडा, इंग्लैंड, पश्चिम योरप के देशों को देखा, मध्य-पूर्व के पेनेटिक देशों को मैंने देखा है तो मैं यह देख रही हूँ कि मानव-निष्ठ उत्पादन, मानवीय मूल्यों को खिलानेवाली वितरण-पद्धति, मानवीय मूल्यों को सुरक्षित रखनेवाली राज्य-व्यवस्था रहे और मानव सर्वोपरि रहे। "न हि मानुषात् परम् किञ्चित्" मनुष्य का गौरव—गरिमा बनी रहे ऐसी शिक्षण पद्धति बापू दिखला रहे थे। यह नहीं कह रही हूँ कि हम व्यक्ति-प्रामाण्य बनाएं। बापू-प्रामाण्य, बाबा-प्रामाण्य, जे. पी. प्रामाण्य ऐसे व्यक्तिप्रामाण्य की बात नहीं कह रही हूँ, जो जीवन-दर्शन मिला है उसको पकड़ लें। पद्धतियाँ बदलनी पड़ेंगी, शायद माध्यम भी बदलने पड़ेंगे।

१९१६ से २० का संदर्भ आज नहीं है, १९४६ का संदर्भ भी आज नहीं है, १९६० का भी नहीं। संदर्भ बदलते हैं तो मूल सिद्धांतों की अभि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

व्यक्तियों के माध्यम बदलें, पद्धति बदलें लेकिन मूल्य नहीं बदलें। सनातन मूल्यों को पकड़ लें और अभिव्यक्ति में परिवर्तन करते चलें, यह अहिंसक क्रान्ति का विज्ञान है।

"Revolution in the very methodology & technique of revolution," यह गांधीजी ने करने की कोशिश की, इसलिए कहती हूँ कि वे एक युग–प्रवर्तक विभूति हैं। वह अपने साथ एक नया युग लाए, जिन्होंने समाज–परिवर्तन के लिए यह कहा कि मैं सत्य अहिंसा को नहीं छोड़ूंगा। असत्य से और हिंसा से आनेवाला स्वराज्य मुझे नहीं चाहिए। यह राष्ट्रीय महासभा का नेता होते हुए कहने का जिस जीवन–साधकने साहस किया है उस विभूति पर तो सौ बार न्यौछावर हो जाऊँ। यह नेता है, कोई मंदिर में, मठ में बैठनेवाला नहीं।

आज मंदिरों में, मठों में, बैठनेवाले यदि मंदिर के लिए, मठ के लिए, किसी संस्था, संगठन के लिए जमीन चाहिए तो स्थानीय जो नेता होगा, अधिकारी होगा उसकी खुशामद करेंगे, उसको घर पर बुलाएँगे, चायपानी करेंगे। भ्रष्ट आदमियों की खुशामद करेंगे दो एकड़ जमीन के लिए। दो–चार–पांच लाख के sanction के लिए, सबसीडी और ग्रांट के लिए मठाधीश और मंदिराधीश करते हैं या रचनात्मक संस्था के प्रमुख करते हैं तो कहाँ रहेंगे मानवीय मूल्य? कहाँ गांधी खड़े रहेंगे? गांधीजी को खड़े होने की जगह नहीं, अवतार की बात करते हैं? रामकृष्ण को छोड़ दीजिए। गांधीजी अब आ जाँय तो इस देश में कौन कहाँ रखेगा? इसलिए गांधी–जीवन–दर्शन का स्पर्श जिनकी चेतना को हुआ है, उनको मनमें ठान लेना चाहिए कि फिर एक बार राज्याश्रय से मुक्त खड़े हो सकते हैं या नहीं? फिर राज्य का आश्रय छोड़ेंगे तो हम किसके आश्रय पर खड़े होंगे?

"आश्रयहीनाः न शोभन्ते पंडिताः वनिताः लताः।"

क्या–क्या कहते हैं? हम कहाँ खड़े होंगे? मैं आपको बहुत सुन्दर आश्रय बताती हूँ। जनता का आश्रय, जनशक्ति का आश्रय, सख्य–सहयोग का आश्रय। राज्य से राष्ट्र बड़ा है, यह श्रद्धा कम से कम सर्वोदयवालों में तो होनी ही चाहिए। राज्य और सरकार से जनता बड़ी है यह जनता में हमारी श्रद्धा आ जाय। यह जनता तो व्यक्त भगवत्सत्ता है। यह नर में नारायण के दर्शन करना स्वामी विवेकानन्द कहते थे 'नर एव अयनं यस्य' नर को अयन बनाकर जो नारायण प्रकट हुए हैं वह विग्रह है असीम का, अमर्याद का। अनन्त का

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सान्त विग्रह यदि कोई है तो वह मनुष्य है, जहाँ वह विग्रह मुखरित हो सकता है। इसलिए गांधी–दर्शन पर श्रद्धा रखनेवालों को फिर एक बार नए ढंग से अपने कार्य के बारे में सोचना होगा। राज्याश्रय छोड़ना और जनाश्रय के नए माध्यम खोजना। कार्य करने की पद्धति बदलनी पड़ेगी। नहीं रहेंगे बड़े मकान, नहीं रहेंगी दुकानें? पता नहीं है कुछ, रिक्षा में खादी डाल करके हमको वेचनी होगी, या गाँव–गाँव में जाकर झोंपड़ियो में रहना पड़ेगा। मालूम नहीं है। फिर एक बार सरका 'सौदा' करने की तैयारी हम करें। जिसमें अध्यात्म और विज्ञान के समन्वित दर्शन का बीज है और कुछ तो अंकुरित भी है उसको लेकर के हम आगे बढ़ें ऐसा मुझे लगता है।

और एक बात मुझे करनी है कि यदि इस देश के नौजवान अध्यात्म और गांधी की बात समझते नहीं है, तो उनके सामने मुझे केवल देश की बात रखनी है। यदि वह लोकतन्त्र को बचाना चाहते हैं, लोकसत्ता को बचाना चाहते हैं तो तालुके में और जिले के स्तर पर संगठित हो कर सङ्कल्प करें—"इस जिले में स्त्रियों पर अत्याचार नहीं होगा, इस जिले में सरकारी अधिकारी हो या राजनैतिक नेता हो या गुंडागर्दी करनेवाले असामाजिक तत्त्व हों वह किसी प्रकार का दंगा फिसाद नहीं कर पाएँगे"। तालुके के लिए ऐसी कोई प्रहरी–समिति बने। नागरिकों की प्रहरी समिति या मंडल बनें, जिनके पास जनता जा सके। किसी गरीब पर अत्याचार हुआ तो कहाँ जायगा? वह गरीब किसी के पास जायगा तो वह देखेगा कि गरीब किस जाति का है? इस जाति के कितने मतदाता इस क्षेत्र में हैं? किस पक्ष के हैं? किस पक्ष को मत देते हैं? इसे देखते हुए इसके ऊपर अत्याचार हुआ है या नहीं इसका फैसला होगा। फिर उसको मदद देनी हो तो होगी। अदालतो में न्याय नहीं मिलता। कहाँ जाएँगे गरीब आदमी? वकीलों की फीस नहीं दे सकते। स्त्रियाँ अपने पर अत्याचार हुए हैं किसके पास जाकर कहें? तो आज जनता जो अनाथ हो गई है इसमें से तालुके के स्तर पर भी ऐसी कोई प्रहरी समिति बनें। जिसके पास जनता जाकर अपने दुःख बतला सके। और यह प्रहरी समिति स्वच्छ नागरिकों की बने कि कहीं भी कोई केस उसके सामने आता है तो उसका कोई राजनैतिक या जातिगत लाभ उठाए बिना उसको पूंजी बनाए बिना वह जाँच करेंगे।

तालुके के स्तर पर निष्पक्ष नागरिकों की दो–तीन समितियाँ बनें। एक प्रहरी–समिति तलाश करनेवाली और एक निःशुल्क कानूनी सहायता देनेवाली या निःशुल्क मार्गदर्शन देनेवाली। हो सकता है, उसके दो–तीन छोटे–छोटे group

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बन जाँय। एक समिति याने बहुत बडा संगठन हो उसके मन्त्री, अध्यक्ष आदि हों—यह नहीं, अखबारों में देने के लिए नहीं, झट उठ कर के प्रेस कोन्फरन्स देने के लिए नहीं। अपना काम इश्तेहारबाजी का नहीं है। यह जनता के दिल में गहरे उतरकर के उनके जीवन में जो दैनिक समस्याएँ आती हैं उनमें मदद करने का है।

आज लोकतन्त्र में लोक अनाथ है इसलिए वे भ्रष्टाचार की तरफ झुकते हैं। उनको लगता है कि हमारा साथ देनेवाला कोई नहीं है इसलिए बेचारे कमजोर पड़ जाते हैं। तालुके के स्तर पर उनकी बात सुननेवाला कोई है! जहाँ जाकर चुपचाप बात करेंगे तो वह ज्ञाति नहीं पूछेगा; किस पक्ष के हैं यह नहीं पूछेगा। वह हमारे गाँव में या तालुके में पंचायत–प्रमुख किस पक्ष का है यह नहीं पूछेंगे, लेकिन हमारी बात सुनी जायगी। और उसका फैसला होगा, मदद होगी; अतः अन्याय–निवारण छोड़ दो लेकिन अन्याय–प्रतिकारक शक्ति तो तालुके में खड़ी होनी ही चाहिए।

देशभर में अंधकार है तो अपने तालुके में भी अंधकार हो यह कोई जरूरी नहीं है। एक प्रहरी समिति जैसी स्थायी मण्डली हो जो घटनास्थल पर जाकर चुपचाप निष्पक्ष दर्शन करके आए। निष्पक्ष, निर्भय, निर्वैर दर्शन कर के आए, प्रश्न का, समस्या का और समिति को विवरण दे कि हां भाई ऐसी घटना हुई है। नहीं तो इतनी अफवाहें उड़ती है कि अफवाहों के कारण ही तालुके में एक भय का वातावरण फैलता है। अफवाहों का निराकरण करने के लिए और सच्चा जो प्रश्न है उसका यथार्थ स्वरूप समझने के लिए, यदि अन्याय हुआ है तो उसके निवारण में उस व्यक्ति की या उस group की मदद करने के लिए इस प्रकार की प्रहरी समिति बने।

इन कमिटियों को काम करने को तो जब प्रसंग खड़ा होगा, तभी आवश्यकता पड़ेगी लेकिन तालुके के लोगों को खबर पड़े कि इस प्रकार को तालुका कक्षा की समितियाँ बनी हैं। ऐसा नहीं कि दफ्तर बनें, एक मकान हो और फिर तन्त्रप्रधान, धनप्रधान काम हो, बल्कि व्यक्तिप्रधान, सख्यप्रधान, सहयोगप्रधान काम होगा। यह काम संगठन–मुक्त, सख्य के सहयोग के आधार पर व्यक्ति के अभिक्रम पर आधारित होगा। उसका काम करने का माध्यम बदलना पड़ेगा। व्यूह–रचना के बिना काम नहीं होता है। प्रेम और करुणा के आधार पर जो लोग खड़े होंगे कोई डॉक्टर कहेंगे, कोई वकील कहेंगे, कोई शिक्षक कहेंगे कि हां इसमें हम काम करने को तैयार है तो जब ऐसे कोई किस्सा आया, तालुके के गाँव में से खबर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आई तो आपकी यह जो प्रहरी समिति है-दो-चार-पाँच मित्रों की उनके नाम उसके पास होंगे वह बुलायेंगे, फलाने गाँव में जाना है आज जाकर आइए तो। क्या हुआ है? असल में हुआ है या नहीं? report लाइए। रिपोर्ट लाएँ तो वह legal aid वालों के साथ बैठें कि इसमें अब क्या किया जा सकता है? तो उसमें यदि प्रतिष्ठित नागरिक, सज्जन शक्ति संगठित है तो जाकर अधिकारी से बात करेंगे। सौम्यता के, सभ्यता के जितने रास्ते हैं अपनाएँ। जहाँ सहयोग हो सकता है वहाँ सहयोग से और नहीं हो सके वहाँ असहयोग और असहयोग से भी काम न चले वहाँ प्रतिकार। तीनों की शक्ति तालुके में जाग उठेगी।

अवश्यम्भावी है जागृत होना। यदि उनको ऐसा मालूम होगा कि कम से कम तालुके के Level पर कोई पीठ पर हाथ रखनेवाले पांच-दस व्यक्ति हैं। नहीं तो आज अकेला व्यक्ति कुछ कर नहीं पाता है। इसलिए तालुके की सज्जनशक्ति संगठित हो। अभी १९८० में हमने प्रयोग किया लोकसरसङ्ग्यात्रा का। मित्रों के साथ बैठकर विचार किया। तीन, चार महीने समय लगेगा। चलो किराए से बस ले लेंगे, पचीस व्यक्तिओं के तीन group बनाए, किस राज्य में कौनसा group मेरे साथ चलेगा, कोई नौकरी करते थे तो एक महीने की छुट्टी ले ली। कोई व्यापार में था उसने पन्द्रह-पन्द्रह दिन का समय दिया। घर में अपने लिए जो खर्च करते हो वह यात्रा में करो। उतने चार महीने के लिए पचीस व्यक्तियों ने अपने और अपने मित्रों के पास से फंड खड़ा किया। किराए पर बस रखी, निकल पड़े। लोग हँसते थे, यह क्या होगा? मालूम नहीं, मैंने कहा लेकिन लगता है अपने से इतना होगा तो करो। नहीं तो समाधि में बैठनेवाले, अध्यात्म-साधना करनेवाले लोग ये पराश्रयजीवी वर्ग है, समाज का उत्पादन खानेवाले यह लोग है, शोषण करनेवाले हैं—यह भ्रम जो है इस भ्रम में से तो देश निकले। ऐसे हम निकले। इस प्रकार से मित्र मिलते गए हर राज्य में जो व्यवस्था भी करते गए। कहीं धर्मशाला में ठहरते, कहीं डाकबंगले में ठहरते। गाँववालों पर रसोई का भार नहीं डालना। किसी भी गाँव में तुम सुई भी नहीं मांगना! और यह मैं कहाँ से सीखी मालूम? मैं सीखी हूँ माओत्सेतुंग से। माओत्सेतुंग के ग्रंथो का अध्ययन किया। १९०५ में माओत्सेतुंग और चाउ-एन-लाइ-जब अपने कार्यकर्ताओं को लेकर साथ निकले The march towards the north तो उसमें उनकी नियमावली थी। उस नियम में था कि जिस गाँव में जाएँगे उस गाँव के लोगों को तुम्हारे लिए रसोई न बनानी पड़े। अपना सीधा तुम को खरीदना है तो सामग्री वहाँ से खरीद लो। दाल-आटा-चावल जो भी लेना है वह। रसोई तुम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनाओ। और एक दिन उनके एक सैनिकने गाँव की बुढिया के पास जबरदस्ती चार अंडे लिए थे तो माओत्सेतुंगने उस गाँव की सभा बुलाई। people's court बुलाया, इस सैनिक को खडा किया और उस बुढिया से कहा कि मेरे सैनिकने इस गाँव का और तेरा अपमान किया है। तेरे उपर जबरदस्ती करके चार अण्डे ले लिए हैं, पैसे दिए बिना। अब माँ तू जो कहेगी वह सजा मैं इसको दूंगा। यह करते हुए जब क्रान्तिकारी उत्तर की तरफ गए तब गाँव के गाँव साथ हो गए। जब ये देखते कि सैनिक तंबू डाल कर के गाँव के बाहर बैठे हैं, गाँव से कुछ माँगते नहीं है। नहीं तो गाँव में कार्यक्रमों का एक आतंक फ़ैल जाता।

तो मेरा यह करना कुछ लोगों को अच्छा लगा, कुछ लोगों को बुरा लगा कि हमारी आतिथ्यशीलता का अपमान होता है। लेकिन मुझे दिखता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए कि गाँव में जाँय और गाँव पर बोझ पड़े। इसलिए कार्यकर्ताओं को कहती हूँ—प्रवास भी करो, काम भी करो, रसोई भी करो, अपने कपड़े भी धोओ। तुम्हारा काम किसी को करना न पड़े यह एक संस्कार देना था। और मुझे कहना चाहिए कि तीन वर्षों में लगभग पचपन (५५) साथी मेरे साथ रहे हैं अबतक अलग-अलग राज्यों में। वह बड़े से बड़े व्यापारी क्यों न हो ? जिसके घर पर तीन मोटर गाडियाँ है या चार बंगले है तो भी यात्रा में चलेंगे तो जमीन पर ही सोना पडेगा, झाड़ू भी लगाना पडे, काम भी करना पड़े तो उसमें वे तैयार हो गए।

इस प्रकार से जिला लेकर के यदि संगठनमुक्त काम करना शुरू करें, तो काम बन सकता है। मैं कहने जा रही थी कि संगठनमुक्त, सख्याधारित और सहयोगप्रवण कार्य की पद्धतियाँ निकालें। संदर्भ बदलते हैं, वैसे पद्धतियाँ बदलें। तो ऐसा काम संगठन बना कर के, दफ्तर बना कर के, फाइलें बना कर के नहीं होगा। जनता में जाकर मिलें और स्नेह से काम करें।

सामान्य नागरिक क्या कर सकता है ? गांधीजी की संतान क्या कर सकती है ? धार्मिक और आध्यात्मिक लोग क्या कर सकते हैं ? आज की परिस्थिति में यह जितने संक्षेप में हो सकता था आपके सामने बातें रखी है। मार्गदर्शन के हेतु से नहीं लेकिन जो सूझता है बहन के नाते वह रखा है। आशा करती हूँ कि अमरेली जिले में, दामनगर ताल्लुके में इस प्रकार से काम शूरू हो जाय। जो कोई आनेवाले नवयुवकों को शिक्षण देने के लिए शिक्षण का केन्द्र बने। जो संस्था भी नहीं, संगठन भी नहीं, केन्द्र बने। शोध करना है तो समन्वित जीवन दर्शन की खोज करनी होगी। हम दावा नहीं कर सकते हैं कि विज्ञान-अध्यात्म के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समन्वित जीवन दर्शन का हमें पूरा खयाल है । पूरा साक्षात्कार है । हम पूरा जानते नहीं है, काम करते–करते सीखते चले जायेंगे । जहाँ ठोकर खाकर हम गिरेंगे हमसे पीछे आनेवाले और खोज करेंगे ।

मित्रो ! इससे अधिक कुछ नहीं कहूँगी । १९५४ के उत्तरार्ध में दादा धर्माधिकारी के साथ गुजरात, सौराष्ट्र में आई थी, प्रवास किया था । राजकोट जिले में ढेबरभाई, पूज्य नारायणदास काका गांधी और वजुभाई साथ रहते । बालुभाई आज यहाँ बैठे हैं। उनको याद होगी १९५४–५५ के हमारे प्रवासों में कई जगह तो बालुभाई भी साथ रहें, जयंतिभाई मालधारी साथ रहते । पुराने दिन याद आते हैं बड़े दिग्गजों के । तो सौराष्ट्र के साथ, गुजरात के साथ पुराना स्नेह सम्बन्ध है। कितना पुराना ? भगवान वासुदेवने द्वारिका में जब राज्य बनाया होगा उतना पुराना सम्बन्ध है, क्योंकि हम भक्त हैं । हम प्रभु के पीछे पागल व्यक्ति हैं इसलिए इतना पुराना सम्बन्ध तो मेरा गुजरात से और सौराष्ट्र से है । नरसिंह भगत जिस दिन दामोदर कुंड में स्नान कर के बाहर निकले होंगे उस दिन से तो है ही ।

मुझे गुजरात से, सौराष्ट्र से बहुत आशा है । सारे देश में जब घूमते हैं तो गुजरात एक स्वस्थ दीपक जैसे लगता है। यह जानते हुए भी कि गुजरात की परिस्थिति इन पिछले दस–बारह वर्षों में कितनी बिगड़ी है, राजनैतिक दृष्टि से भी मूल्यों का कितना अधःपतन हुआ है, आपके भावनगर, अमरेली जिले में भी कैसे आतंक का वातावरण है; सब जानती हूँ, फिर भी कहती हूँ कि अन्य राज्यों से यहाँ काफी स्वस्थता है । यहाँ रचनात्मक कार्यकर्ताओं के जो आश्रम है या संस्था हैं वह अन्य राज्यों से बहुत अधिक है । इसलिए यदि सौराष्ट्र जाग उठे तो सारे देश का मार्गदर्शन करने की शक्ति आज भी यहाँ है । यहाँ के कार्यकर्ताओं के जनसेवकत्व में, और गणनेतृत्व में वह शक्ति है इस श्रद्धा से मैं आती हूँ ।

॥ ॐ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"ध्यान हो, समाधि हो, अध्यात्म हो, वह जीवन के अभिमुख है, जीवन से विमुख नहीं। इसलिये एक ओर आप के पास ध्यान की, मौन की बात करती हूँ, दूसरी ओर जीवन-साधना की। 'साधक' बनने से यदि 'मनुष्य' मिट जाता हो तो ऐसा समाजद्रोही अध्यात्म किस काम का? भाई! वह तो अमीरों-बुद्धिनिष्ठों का ऐश-आराम बनेगा! मेरा जो गरीब, नंगा-भूखा समाज है उसको ऐसा अध्यात्म और ऐसा आत्मबल चाहिये जिसमें साधक मनुष्य रहेगा, उसके मानवीय मूल्य कायम रहेंगे और वह राष्ट्र का नागरिक भी रहेगा। देश की नागरिकता का मूल्य जो खतरे में है उसको बचाने की दृष्टि से हम कटिबद्ध हो जाँय। एक तरफ आन्तरिक साधना हो और बाहर समाज के साथ ऊर्ध्वगति का काम चले। तब सर्वोदयी समाज बनेगा, व्यक्ति साम्ययोगी होंगे और व्यवस्था लोकतान्त्रिक रहेगी।"

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi